महिला रत्न

Mahilā Ratna

लेखिका:—

श्रीमती शकुन्तला देवी ऋषि, प्रभाकर

श्रीमती सन्तोष कुमारी शर्मा, प्रभाकर

Shrimati Shakuntala Devi Rishi

& Shrimati Santosh Kumari

प्रकाशक:—

राजेन्द्र कुमार एण्ड कम्पनी

दिल्ली।

मूल्य १।।) रुपया

मुद्रक:—

वतन प्रेस, कूचा घासीराम, देहली।

कुछ बातें

'महिला-रत्न' में कुछ प्राचीन और कुछ आधुनिक महिलाओं की जीवनियाँ हैं। जो अपने–अपने युग की प्रतीक हैं। यह प्राचीन और नवीन का सुन्दर सामंजस्य ही स्वाधीन भारत की महिलाओं को अपना आदर्श स्थिर करने के लिए पथ-प्रदर्शक का काम करेगा।

प्राचीन काल से ही मातृ-शक्ति की महानता धर्म और समाज दोनों ने स्वीकार की हैं। भारतीय इतिहास का वैदिक-काल नारी-स्वाधीनता का स्वर्ण युग था। उस समय की स्त्रियों को पुरुषों के समान ही धार्मिक, साहित्यक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में प्रवेश करने की पूर्ण स्वाधीनता थी। वे पढ़ी-लिखी विदूषी थीं। बड़ी-बड़ी सभाओं में उन्होंने शास्त्रार्थ किये। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे भयावह वनों, उत्तंग शैल-शिखरों को पार करने में भी, संकोच नहीं करती थीं। उन्होंने केवल इतिहास को पढ़कर ही संतोष नहीं किया बल्कि इतिहास का निर्माण भी किया है।

वैदिक काल की अपेक्षा पौराणिक-काल में हमारे समाज

का संगठन कुछ शिथिल-सा हो चला था जिसका प्रभाव नारी जीवन पर भी पड़ा। इसके उपरान्त विदेशियों के आक्रमणों ने नारी-जीवन को अन्धकार में डाल दिया। उन्हें "कूप-मण्डूक" आत्म—चेतनता हीन—विलास की सामग्री बना दिया गया। वे पर्दे के अन्दर चार दीवारी में बन्द हो गईं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से अलग रहते हुये और अपनी सीमित परिधि में भी स्त्री जाति ने अपनी मर्यादा को स्थिर रखा।

लज्जा और संकोच में लिपटी हुई नारी, जो अपने ही अंदर में सो रही थी, सहसा बौद्ध-धर्म के प्रादुर्भाव से चौक उठी, और एक बार फिर उसने सिर उठा कर दुनिया की ओर देखा उसकी आँखों का अन्धकार लुप्त हुआ उसकी भुजाओं ने एक बार फिर बल-संचार का अनुभव किया। उसके मस्तिष्क में एक नवीन स्फूर्ति अनुभूत हुई। लेकिन पश्चिमोत्तरी सीमा पार दो प्रदेशों में भारत पर आक्रमणों का तांता बंध गया अब तो रही सही संस्कृति और सभ्यता भी जाती रही। लेकिन वीरता की भावना का जागरण हुआ भारतीयों ने आत्म-बलिदान द्वारा अपनी वीरता का परिचय दिया। स्त्रियों ने भी अपनी सतीत्व और स्त्रीत्व भी रक्षा के लिये बलिदान दिये। इन बलिदानों में राजपूताने की महिलायें विशेष उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजी सामाज्य के आगमन से भारतीय जीवन में विदेशी दासता के विरुद्ध राष्ट्रीय भावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ। भारत के कोने-कोने से स्वाधीनता

आंदोलन उठ खड़े हुए । इन जन-आन्दोलन में सोई हुई नारी जाति में नव जीवन, नव-जागरण और नई चेतनता का उदय हुआ । वे स्वाधीनता संग्राममें पुरुषोंके कन्धे से कन्धा मिलाकर जन-आँदोलनों का नेतृत्व करती रहीं ।

आज स्वाधीन भारत में भी स्त्रियां राष्ट्र निर्माण में पूर्ण सहयोग दे रही हैं ।

कुमारी संयुक्ता भल्ला प्रभाकर का शुभ परामर्श हमारे लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ अतः हम उनका हृदय से धन्य-वाद करती हैं ।

शकुन्तला ऋषि

संतोष कुमारी शर्मा

विषय-सूची

तेजस्विनी सती

सहस्रों वर्ष हुए, जब आर्य लोग सांस्कृतिक विजय करते हुए भारतवर्ष में अपनी कीर्ति का विस्तार कर रहे थे। उन दिनों पुरुषों के समान नारियां भी संग्रामों और संसदों में भाग लेती थीं। सच तो यह है कि आर्यों की सांस्कृतिक विजय की नारियां ही प्रधान सूत्रधार थीं। जिन नारियों ने इस महान् विजय में भाग लिया है उनमें सबसे अधिक तेजस्विनी थी सती।

सती का जन्म कहां हुआ? कब हुआ? इत्यादि प्रश्न आजतक ऐतिहासिकों के विवाद का विषय बने हुए हैं। उनके जन्म के सम्बन्ध में पुराणों में अनेक प्रवाद हैं। इतना तो निश्चित है कि उनके जन्म के समय आर्यों (देवों) और अनार्यों (असुरों) का भयानक संघर्ष छिड़ा हुआ था। आर्य अनार्यों की शक्ति से भीत एवं व्यथित थे। वे अपने नेता ब्रह्मा के पास गये और ऐसे अनुपम शक्तिशाली योद्धा की मांग की जो असुरों को परास्त कर सके। ब्रह्मा ने गम्भीरता पूर्वक सोच कर कहा कि शंकर के समान तेजस्वी व्यक्ति ही असुरों को पराभूत कर सकता है। किंतु ऐसा व्यक्ति कहां से आये कौन ऐसी नारी है जो महायोगी शंकर की सहचरी बन सके? शंकर संयमियों के शिरोमणि शंकर को विवाह के लिये उद्यत करना सहज न था। अगणित जन प्रयत्न करके हार गये थे। क्योंकि उनके योग्य कन्या नहीं मिलती थी।

सौभाग्य से दक्ष प्रजापति ने विष्णु माया की आराधना करके उन्हें

अपनी पुत्री के रूप में प्राप्त किया था। दक्ष प्रजापति का निवास जहां आजकल कनखल है उसी के आसपास था। कन्या का नाम सती रखा गया। बचपन से वह वह तेजस्विनी हठी और दुर्धर्ष थी। अपमान किंचित् भी सहन न कर सकती थी। बाल्यकाल से ही उसका स्वभाव और सामर्थ्य असाधारण था। धीरे-धीरे बचपन बीता। यौवन की आभा से अङ्गच्छटा में सौष्ठव और कान्ति दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। वीरों के चरित्रों को श्रवण करने में सती की प्रबल रुचि थी। शंकर के पराक्रमों और सामर्थ्यों का वर्णन सुन कर वह अहर्निश शंकर के ध्यान में ही मग्न रहने लगी। उसके हृदय में शंकर की मूर्ति अंकित हो गई। धीरे-धीरे यह समाचार शंकर के भी कर्णगोचर हुआ, भगवान् शंकर उसकी अनुपम भक्ति, दृढ़ता और साहस पर मुग्ध हो गये।

आश्विन मास था। शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि—सती शंकर के ध्यान में तल्लीन थी। इधर भगवान् शंकर स्वयं इस अद्भुत भक्त का दर्शन करने के लिये पधारे थे। ध्यान से नेत्र खुलने पर साक्षात् शंकर को सम्मुख खड़ा देख कर सात्त्विकभावापन्न सती को रोमाञ्च हो आया। लज्जा से उसके कपोल अरुण हो गये। उस ने शंकर के चरणों पर मस्तक रख दिया, शंकर उसे इच्छा पूर्ति का वर देकर चले गये।

शंकर और सती के पारस्परिक प्रेम की यह कथा देवगण में विख्यात हो गई। देवगण शिवजी के तेजः प्राप्ति की आशा से मन में प्रसन्न हो उठे। किंतु इस समाचार से सती के पिता दक्ष प्रजापति प्रसन्न न हो सके। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा। किंतु सती के आग्रह को वह जानते थे। इस लिये वह कर भी कुछ न सकते थे।

शंकर की वेष-भूषा, उनका रहन सहन संसार से भिन्न था। उनके गौर देह पर भस्म, गले में सर्प माल, कर में कपाल, परिधान गजचर्म था—पराक्रमी शंकर का वेष सर्वथा अनुरूप था। वैभव के प्रदर्शन से दूर सरल। विवाह के समय भी उनकी उस वेषभूषा में कोई अंतर न था। दक्ष प्रजापति ने जब शंकर का यह रूप देखा तब उन्हें अपने वैभव के सर्वथा विरुद्ध लगा। किंतु अब क्या हो सकता था। गणनायक शंकर के दुर्धर्ष तेज से कौन अनभिज्ञ था। अन्ततः निर्विघ्नता से सती और शंकर का विवाह सम्पन्न हो गया।

शङ्कर के साथ विवाह करने में सती का विशेष प्रयोजन था—आर्यों की विजयाभियान में स्वयं सक्रिय भाग लेना। शंकर उसे लेकर कैलाश पर आये। सती शंकर के साथ कठोर साधन में लीन हो गई। शंकर का आश्रम सती के तेज से समुद्भासित हो उठा। ऋषियों, महर्षियों, सेनापतियों और शूरवीरों के सत्संग से सती का ज्ञान निरन्तर बढ़ता गया।

वैसे तो शंकर स्वभाव से आशुतोष थे किन्तु उनके प्रचण्ड प्रकोप से विश्व कांपता था। एक बार सती के किसी साधारण से अपराध पर शंकर ने हृदय से उनको परित्याग कर दिया, किंतु अपना संकल्प उन्होंने सती पर प्रकट न किया। वे चिर समाधि में लीन हो गये। शंकर की इस विरक्ति को सती ताड़ गई और धैर्य पूर्वक उनकी सेवा में लगी रही। उनके लिये वह सभी आवश्यक सामग्री जुटाती—शून्य हिमाच्छादित पर्वत शिखर पर मौन और एकाकी उनके दिवस शंकर की सेवा में बीत रहे थे और शंकर समाधि में मग्न रहते सती से बोलते तक नहीं। चिर काल तक धैर्य पूर्वक वह सेवा करती रहीं अन्त में शंकर को अपना

संकल्प त्यागना पड़ा। सती ने वर मांगा—जन्म-जन्मान्तर में यही पति हो।

इन्हीं दिनों दक्ष ने प्रजापति बनने के लिये बृहस्पतिसत्र नामक महायज्ञ का अनुष्ठान करने का उद्यम करना आरम्भ किया। देश देशान्तरों के ऋषियों और देवों को निमंत्रण दिया गया। सम्बन्धीजन और इष्ट मित्र सब बुलाये गये। किंतु शंकर को जान बूझ कर निमंत्रण नहीं दिया न सती को ही बुलाया। इसका कारण था कि एक बार दक्ष ने एक यज्ञ का आयोजन किया था। सब उद्यम होने पर जब वह यज्ञ मंडप में पधारे तब सभी ऋषि, देवों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया किंतु ब्रह्मा और शंकर खड़े नहीं हुए—ब्रह्मा तो दक्ष के पिता थे किंतु शंकर का व्यवहार दक्ष को अखरा, वे रुष्ट हुए और शंकर को कठोर वचन कहे, शाप तक दे डाला किंतु शंकर खिन्न मन होकर मौन हो वहां से चले आये। यह रोष इतना बढ़ गया था कि वह न केवल शंकर से अपितु उनके अनुचरों और प्रेमियों से भी द्वेष मानने लगे। सती भी उनके द्वेष का पात्र बनी।

देवों के गमन का मार्ग कैलाश के शिखर से होकर जाता था। देव, यक्ष, गंधर्व किन्नर सपरिवार अपने यानों विमानों से आ रहे थे। सती यह सब आश्चर्य से देख रही थी। अंत में उसने शंकर से पूछ ही लिया कि देवगण आनंद मग्न हो कहां प्रयास कर रहे हैं? शंकर ने बताया तुम्हारे पिता के महायज्ञ में निमंत्रित होकर जा रहे हैं। सती का मन माता पिता भाई बहिन के स्नेह का स्मरण कर आर्द्र हो उठा। वह बोली "तब तो मुझे भी जाना चाहिये मेरी और बहिनें भी वहां आयेंगी। माता पिता से मिले युग बीत गये हैं। यदि आज्ञा हो तो मैं भी उनके दर्शन कर आऊं।"

शंकर सब जानते थे। बोले—"सती! बिना बुलाये जाने से सज्जनों की मान हानि होती है और अंत में पश्चात्ताप करना पड़ता है। यदि उन्हें तुमसे स्नेह होता तो वे अवश्य तुम्हें निमंत्रित करते। हमारा जाना अनुचित है।"

"प्रभो! यह सत्य है कि बिना बुलाये जाने से मान हानि होती है किंतु शास्त्र कहता है माता-पिता, गुरु और सुहृदों के यहां बिना बुलाये जाने से भी मान-हानि का भय नहीं है। संभव है कि उनका निमंत्रण हम तक पहुँच न पाया हो। अथवा कार्य व्यस्तता के कारण विस्मरण हुआ हो।"

सती ने निवेदन किया।

शंकर ने गुरु गंभीर स्वर में कहा—"जहां प्रेम और आदर का भाव न हो वहां नहीं जाना चाहिये। जहां घृणा और रोष की दृष्टि से देखा जाय वहां मनुष्य के स्वाभिमान को बहुत चोट पहुँचती है। तुम्हारे पिता मुझ से द्वेष रखते हैं मेरे अनुचरों से घृणा करते हैं।"

किंतु सती का मन घर जाने के लिये उत्सुक था, वह शांत न हो सका अंत में शंकर ने उन्हें जाने को आज्ञा दी। और साथ में अपने पराक्रमी अनुचरों का एक गण भैरव की अधिनायकता में उनके साथ भेज दिया।

सती यज्ञमण्डप में पहुँची। यज्ञमण्डप देव-देवियों से खचा-खच भरा था। दक्ष ने उसकी ओर तिरस्कार और उपेक्षा पूर्ण दृष्टि से एक बार देखा। माता और भगिनियों ने स्नेह से उसका स्वागत किया किंतु पिता के तिरस्कार से सती का मानो हृदय क्षुब्ध हो उठा। शंकर की कही हुई सारी बातें एक साथ मस्तिष्क में घूम गईं।

यज्ञ में शंकर को कोई भाग न देकर अपमानित किया गया। यह

देखकर सती के क्रोध का पारावार न रहा। वह उठी और दक्ष के सिंहासन के समीप आई, गंभीरतापूर्वक बोली--पितृवर ! आपने यज्ञ में शंकर को कोई भाग न देकर हमें अपमानित किया है, जिसके कारण मेरा हृदय खण्ड-खण्ड हो गया है। शंकर सब देवों के देव महादेव हैं उनके पराक्रम से देव विजयी होते हैं, उनका अपमान आपके लिये अनिष्टकारी होगा।

सती की रोषमयी वाणी सभा-मण्डप में गूंज उठी। शंकर के रुद्र कोप का स्मरण कर देवगण और ऋषिगण कंपित हो उठे। क्षणभर चुप रहकर सती फिर बोली—मैं इस अपमान को सहन नहीं कर सकती और अपना प्राण त्याग करती हूँ। इतना कह कर उसने अपने आपको प्रज्वलित कुण्ड में फेंक दिया।—सती की इस उज्ज्वल स्वामी-भक्ति को देख कर देव-ऋषियों में साधुवाद होने लगा।—अंत में शंकर के गणों ने यज्ञ का ध्वंस कर दक्ष का सिर काट कर इस अपमान का प्रतिशोध किया। अंत में देवों और ऋषियों को स्तुति से शंकर की क्रोधाग्नि शांत हुई। परन्तु सती को विरहाग्नि शंकर के हृदय में अनंत काल तक जलती रही। सती के ही आदर्श को लेकर सती होना और सत्याग्रह का आविष्कार हुआ। इसप्रकार सत्याग्रह करके समाज के समक्ष अपना गौरव उच्च करने वाली प्रथम आर्य महिला थी--सती। जिनकी उज्ज्वल कीर्ति आज भी हिन्दुओं के घर-घर में गाई जाती है।

आदर्श सहचारिणी अरुन्धती

आकाशचारी नक्षत्रों में अरुन्धती एक तारा है, जो सप्तर्षियों में वसिष्ठ के समीप रहता है। आर्यगण विवाह संस्कार में वधू को अरुन्धती का दर्शन कराते हैं। अरुन्धती आर्यों के लिए सहचरण और स्थिरता का प्रतीक बन गया है। क्यों ? इसके पीछे आर्य नारी के उज्वलन्त त्याग की गाथा का इतिहास है।

त्रेता युग में अरुन्धती नाम की एक त्यागपरायणा नारी हो गई हैं। जिन्होंने अपनी विद्वत्ता, प्रतिभा, लोकसेवा और पतिसेवा के बल पर इस आदर्श का निर्माण किया था। अरुन्धती के जन्म के संबन्ध में इतिहास कुछ निश्चित रूप से नहीं वर्णन करता। पुराणों में कहीं इन को दक्ष की पुत्री बताया है, तो कहीं मेधातिथि की यज्ञ—प्रसूत कन्या कहा है। किंतु इतना निश्चित है चंद्रभागा (चिनाव) के तट पर महर्षि मेधातिथि के आश्रम में ही उनका बाल्यकाल बीता था। महर्षि ने अरुन्धती को शिक्षित करने में पूर्ण प्रयत्न किया था। किंतु इस प्रतिभावती बालिका की शिक्षा के लिये आश्रम की सीमा छोटी थी। अंततः ब्रह्मा की सम्मति से अरुन्धती को सावित्री, बहुला आदि परम विदुषी महिलाओं के समीप शिक्षार्थ भेजने का निर्णय किया था। मानस पर्वत उस समय आर्य देवियों की शिक्षा का मुख्य केन्द्र था। जहां सरस्वती

सावित्री, गायत्री, आदि देवियां आर्य नारी रत्नों के निर्माण का कार्य करती थीं। आर्य नारियों की तेजस्विता, वाग्मिता और प्रतिभा अनेक स्थानों में देवगण को भी आश्चर्य में डाल देती थी।

ऋषि मेधातिथि अरुन्धती को लेकर इसी शिक्षा केंद्र में पहुँचे। और उसे उपर्युक्त देवियों के संरक्षण में रख दिया। सात वर्ष तक अरुन्धती ने यहां शास्त्रीय शिक्षा प्राप्त की और लोक सेवा का पाठ पढ़ा।

शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात् सावित्री ने नारद के द्वारा यह समाचार महर्षि मेधातिथि के पास भेजा। और अरुन्धती के विवाह के सम्बन्ध में प्रयत्न आरम्भ हुआ। अंत में महर्षि वसिष्ठ जो उन दिनों आर्यों की सांस्कृतिक विजय के महान् नेता थे—के साथ अरुन्धती के परिणय का निर्णय हुआ। महर्षि मेधातिथि के अनुरोध से तपस्वी वसिष्ठ ने अरुन्धती को अपनी सहधर्मिणी अंगीकार किया।

इधर अरुन्धती की रूप और गुण की ख्याति दूर-दूर तक विस्तृत हो चुकी थी अनेक देव उसके दर्शनों के लिए ललायित रहते थे। वसिष्ठ के साथ विवाह के समाचार से वह संतुष्ट न हो सके। वसिष्ठ के साथ अरुन्धती का जीवन बड़े आनंद से बीतने लगा। वसिष्ठ के आश्रम में आने वाले सभी रोगियों दर्शकों और जिज्ञासुओं को माता अरुन्धती के वात्सल्य की अनुभूति होती। उनके संयम और सेवा की कीर्ति दिगदिगंत में विस्तृत हो गई। एक बार स्वयं ब्रह्मा विष्णु और महेश भी साक्षात्कार के लिये द्वार पर उपस्थित हुए। माता अरुन्धती के वात्सल्य से प्रभावित होकर गये, और उन्हें आशीर्वाद दिया कि—तुम पतिव्रता शिरोमणि हो, तुम्हारे जैसी

सती अभी तक भूतल पर नहीं हुई। जो कन्यायें विवाह काल में अग्नि के समक्ष तुम्हारा ध्यान करेंगी उनको अखण्ड सौभाग्य और सुख की प्राप्ति होगी।"

इसी प्रकार एक दिन अरुन्धती घट लेकर नदी से जल भरने जा रही थी अकस्मात् सूर्य, इन्द्र, अग्नि आदि देवगण आश्रम में आ गये। घट रखकर अरुन्धती ने उनका स्वागत किया और उनके आने का कारण पूछा। देवगण बोले एक जटिल प्रश्न के समाधान के लिये हम लोग आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। अरुन्धती ने कहा अच्छा मैं जल भर कर अभी आती हूं और आपके प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करूंगी। देवगण बोले घड़ों को यहीं भर देना तो हमारे लिये साधारण बात है—आप इसके लिये इतना श्रम क्यों करने लगीं। अरुन्धती देवों के इस अभिमान को देखकर मौन हो एक ओर खड़ी हो गई। कहा जाता है कि देवगण पूरी शक्ति लगा कर भी घड़ों को पूरा न भर सके घड़ों का एक भाग सदा रिक्त दीखता था। देवतागण को आश्चर्य हुआ और उनका अभिमान टूट गया अंत में अरुन्धती ने कहा कि यदि आज्ञा हो तो मैं अपने पातिव्रत्य के प्रताप से इन घड़ों को अभी पूर्ण कर दूं। देवों ने स्वीकार कर लिया। अरुन्धती के कर का स्पर्श होते ही घट पूर्ण हो गये।

इस घटना को देखकर चकित देवगण को प्रश्न करने का साहस न हुआ वे लौट चले। अरुन्धती ने उन्हें स्मरण दिलाया कि आप प्रश्नों के समाधान बिना ही जा रहे हैं, क्यों?

देवगण हाथ जोड़ कर संमुख खड़े हो गये और बोले, देवि!

हम आपकी परीक्षा लेने आये थे—किंतु यहां हमारी परीक्षा हो गई। आपके तेज और प्रतिभा से हम सन्तुष्ट हैं।

इस प्रकार की अनेक घटनाएं अरुन्धती के सम्बन्ध में पुराणों में वर्णित हैं। जिससे उन के पातिव्रत्य का प्रताप, सेवा की उज्ज्वल भावना, धैर्य और प्रतिभा का ज्ञान होता है। जिन गुणों के कारण वह आर्य नारियों में इतना पूजनीय स्थान प्राप्त कर सकी। प्रत्येक आर्य कन्या अरुन्धती को अपना आदर्श मानती है॥

—(:)—

वाचक्नवी गार्गी

वेद के मंत्रों का साक्षात् करने वाली अनेक ऋषिकायें हुई हैं। उन सब में वाग्मिता और बुद्धि वैभव में गार्गी सब से बढ़ कर थी। उनके ज्ञान का लोहा तत्कालीन बड़े-बड़े ऋषि भी मानते थे। दार्शनिक ज्ञान के क्षेत्र में अनेक पण्डितों का उन्होंने मान मर्दन किया था। उपनिषदों में विदेहराज जनक की सभा में ब्रह्मवाद के प्रबल प्रचारक महर्षि याज्ञवल्क्य के साथ उनके शास्त्रार्थ का वृत्तांत प्रसिद्ध है।

गार्गी का जन्म जैसा कि नाम से प्रतीत होता है गर्ग गोत्र में हुआ था। उनके पिता का नाम वचक्नु था। उनके पिता महाविद्वान् और वक्ता थे। उन्होंने अपनी पुत्री को उच्च शास्त्रीय ज्ञान में दीक्षित किया था। दार्शनिक समस्याओं के समाधान तथा प्रचार में निरत रहने के कारण वाचक्नवी ने विवाह का विचार ही नहीं किया था। उसके प्रबल तर्क से परास्त पण्डितों को इस प्रतिभाशालिनी से विवाह की प्रार्थना करने का साहस भी न होता था।

विदेहराज जनक उन दिनों अपने विद्या-व्यसन तथा विशिष्ट दार्शनिक विचारों के कारण प्रसिद्ध थे। समय-समय पर उनकी सभा में दूर-दूर के विद्वान् एकत्रित होते और विविध विषयों पर वादविवाद करते अपने मत की प्रतिष्ठा करते थे। और जनक उनके ज्ञान के अनुरूप ही दक्षिणा देकर उनका सत्कार करते थे।

क्षत्रिय राजाओं ने एक नये दर्शन ब्रह्मवाद को जन्म दिया था।

जो अत्यंत सूक्ष्म विचार शीलता का परिचायक था। ऋषियों में बहुत कम लोग इस ब्रह्मवाद से परिचित थे। जनक ने एकबार अपनी सभा में ब्रह्मज्ञानी को एक सहस्र स्वर्ण शृङ्ग मण्डित गायें देने की घोषणा की। इस घोषणा से पण्डित मण्डली सन्नाटे में आ गई। सहस्त्रों पण्डितों के मध्य कौन ब्रह्मज्ञानी होने का अभिमान करके इन गौओं को ले जा सकता है। विद्वन्मण्डली एक दूसरे का मुख देखने लगी। अंत में महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य को गौएं हांक ले जाने का आदेश दिया। यह देख कर विद्वन्मण्डली रोष से विक्षुब्ध हो उठी। त्वं नो याज्ञवल्क्य! ब्रह्मिष्ठोसीति—याज्ञवल्क्य एक तू ही हम लोगों में ब्रह्मज्ञानी है? इस प्रकार का प्रश्न सभा मण्डप में गूंज उठा। महर्षि याज्ञवल्क्य ने शांतिपूर्वक कहा—"नमो वयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मो गोकामा वयम्" हम ब्रह्मज्ञानी को नमस्कार करते हैं। हम गौओं की कामना वाले हैं। किंतु आप में से जो पण्डित कुछ पूछना चाहे मुझ से पूछ सकता है। याज्ञवल्क्य की इस गर्वोक्ति से पण्डित मण्डल में बिजली सी कौंध गई। विदेहराज जनक ने कहा कि आप में से क्रमशः एक-एक व्यक्ति प्रश्न करे भगवान् याज्ञवल्क्य उसका उत्तर देंगे।

क्रमशः होता अश्वज, जरत्कारु का पुत्र आर्त भाग, भुज्यु लाह्यायनि, उषस्त चाक्रायण, विदग्ध शाकल्य आदि ऋषियों ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किये और उनका उत्तर पाकर उपरत हो गये। इस विवाद की परिसमाप्ति होते न देख कर विदुषी गार्गी ने घोषित किया—अच्छा तो, भगवान् ब्राह्मण! मैं याज्ञवल्क्य से दो प्रश्न पूछती हूं, यदि यह उन्हें बता देंगे तो तुम में से कोई भी इन्हें ब्रह्मवाद में नहीं जीत सकेगा।

याज्ञवल्क्य—पूछो गार्गी !

गार्गी—याज्ञवल्क्य ! जैसे काशी या विदेह का कोई सैनिक धनुष पर प्रत्यंचा को चढ़ा शत्रुवेधक फल वाले दो तीरों को लेकर उपस्थित हो वैसे मैं तुम्हारे समक्ष दो प्रश्नों को लेकर उपस्थित हुई हूँ। उन्हें मुझे बताओ।

याज्ञ०—पूछो गार्गी !

गार्गी—याज्ञवल्क्य ! जो यह द्युलोक से ऊपर, जो पृथ्वी के नीचे और जो द्युलोक तथा पृथ्वीलोक के मध्य में है जो अतीत वर्तमान और भविष्य कहा जाता है—वह किस में ओतप्रोत है ?

याज्ञ०—वह आकाश में ओतप्रोत है।

गार्गी ने कहा, याज्ञवल्क्य ! तुम्हें नमस्कार हो जो तुमने मुझे यह बताया।

अब दूसरा प्रश्न सुनो।

याज्ञ०—पूछो गार्गी !

गार्गी—आकाश किस में ओतप्रोत है ?

याज्ञ०—गार्गी, इसे ही ब्राह्मण अविनाशी कहते हैं जो न स्थूल, न सूक्ष्म, न ह्रस्व, न दीर्घ, न आर्द्र, न शुष्क, न छाया, न अंधकार, न वायु, न आकाश, न संग, न रस, न गंध, नेत्र, कर्ण, मन, वाणी से अज्ञेय, न अग्नि, न प्राण, न मुख, न परिमाण, न आंतरिक न बाह्य है न वह किसी को खाता है और न उसको कोई खाता है। गार्गी इसी अविनाशी की आज्ञा में द्युलोक और पृथ्वी, मुहूर्त, रात्रि,पक्ष, मास, ऋतु और वर्ष–स्थित हैं। इसी अविनाशी की आज्ञा में हिमालय से पूर्व या पश्चिम की ओर बहने वाली नदियां बहती हैं। गार्गी इसी

की आज्ञा से मनुष्य दाताओं की, देव यजमान की प्रशंसा करते हैं— गार्गी इस अविनाशी को बिना जाने किये गये यज्ञ, हवन और दीर्घकालीन तप सब नाशवान् हैं। इस अविनाशी को जाने बिना जो मरता है वह भाग्यहीन है। जो इसको जानकर मरता है—ब्राह्मण है। वह यह अविनाशी गार्गी, न देखा इसका द्रष्टा, न सुना श्रोता, न मनन किया मनन करने वाला, न जाना ज्ञाता।—इस से अतिरिक्त कोई भी देखने, सुनने, सोचने और जानने वाला नहीं है। इसी अविनाशी में आकाश ओतप्रोत है।

गार्गी ने फिर पूछा कि किसमें यह अविनाशी ओतप्रोत है।

याज्ञवल्क्य ने कहा कि—प्रश्न की सीमा का उलंघन न कर गार्गी— कहीं ऐसा न हो कि तेरा सिर फट जाये।

इस प्रश्नोत्तर से गार्गी वाचक्नवी की प्रतिभा और विद्वन्मंडली में उनकी प्रामाणिकता तथा प्रभाव का भली भांति ज्ञान हो जाता है।

इसी प्रकार की विदुषी नारियों ने प्राचीन काल में आर्य संस्कृति का पथ-प्रशस्त किया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ रह कर उन्होंने कार्य किया है। आर्य नारी पुरुष की सहधर्मिणी है, दासी नहीं।

—:(०):—

सीता

सती सीता अमर है। उसका अविचल पतिव्रत-धर्म संसार भर की स्त्रियों के लिए आदर्श है और आदर्श रहेगा। आज के दिन भी सती सीता का चरित्र भारत के घर-घर में सश्रद्धा-सभक्ति पाठ किया जाता है। देवी सीता ने जिस दिन से गार्हस्थ्य-जीवन में प्रवेश किया, उस दिन से लेकर सीता यातनाओं एवं आपत्तियों द्वारा ही सताई जाती रही। परन्तु उस देवी ने महान् कष्टों की समुपस्थिति में भी सी तक नहीं की, प्रत्युत सदैव प्रसन्नता पूर्वक प्रत्येक आपत्ति को दैवि-देन समझ कर अपनाया। सीता में असाधारण सहन-शीलता एवं धैर्य था और उसी के बल पर वह अपने जीवन के अन्त काल तक अपने धर्म पर अडिग रही। इसीलिए सीता आदर्श है, उसका पतिव्रत धर्म आदर्श है। संसार में जब तक इतिहास का अस्तित्व रहेगा, तब तक सीता का चरित्र भी जीवित रहेगा।

इन दिनों जहां तिरहुत है, वह पुरातन काल में मिथिला या विदेह कहलाता था। मिथिला के महाराज के सीरध्वज और कुशध्वज नामक दो राजकुमार थे। सीरध्वज बड़े होने के नाते राजसिंहासन के उत्तराधिकारी हुए। सीरध्वज राजनीतिज्ञ होने के साथ ही साधु-स्वभाव एवं धर्मज्ञ भी थे। राजा होते हुए भी उनका आचरण ऋषियों का-सा था और इसी लिए उन्हें राजर्षि भी कहा जाता था। सीरध्वज प्रजा-पालक थे। प्रजा का पुत्रवत् पालन करते थे, इससे वे 'जनक' भी कहलाये और फलतः सीरध्वज का दूसरा नाम 'राजर्षि जनक' ख्यात

हुआ। राजर्षि जनक की पुत्री का नाम सीता था। सीता अत्यन्त रूपवती थी। अनेक गुणों से अलंकृत सीता ने जब युवावस्था में पदार्पण किया तो उसके रूप-गुण को देख राजर्षि ने मन ही मन सोचा कि सीता-सी कन्या के लिए असाधारण वर होना चाहिये। तदनुसार महर्षि ने प्रतिज्ञा की कि जो वीर मेरे यहां रखे शिव-धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा, वही देवी सीता का पाणि-ग्रहण करने का अधिकारी होगा।

राजर्षि जनक की इस दृढ़-प्रतिज्ञा की चहुं ओर ख्याति हो गई और अनेक राजकुमार सीता से विवाह करने की चेष्टा से मिथिला आते, किन्तु उन्हें अपमानित एवं निराश होकर लौट जाना पड़ता। शिव-धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाना तो एक ओर रहा, अनेकों से तो धनुष भूमि पर से उठाया भी नहीं जा सकता था। लंकाधीश रावण भी अपने भाग्य की परीक्षा के लिए एक बार मिथिला आया, किन्तु उसे मुंह की खानी पड़ी और वह अपना-सा मुंह लेकर लौट गया।

विवाह—एक दिन अयोध्यापति महाराज दशरथ राज सभा में विराजमान थे। उसी समय समाचार मिला कि महर्षि विश्वामित्र पधारे हैं। महर्षि ने राजसभा में प्रवेश कर महाराज को आशीर्वाद दिया और महाराज ने यथोचित रूप में महर्षि का स्वागत करते हुए प्रणाम किया। तदनन्तर महर्षि ने कहा, "महाराज, आप क्षत्रिय हैं। तपोवन में राक्षसों के उपद्रव के कारण ऋषि-मुनियों के यज्ञ विध्वंस हो रहे हैं। मैंने एक यज्ञ निर्विघ्न समाप्त करने का निश्चय किया है और यह तभी सम्भव हो सकता है, जब कि आपकी सहायता प्राप्त हो। राक्षसों को नाश करने की आप ही में शक्ति है।"

महाराज ने विनय-भाव से पूछा, "महर्षि, मेरे योग्य जो आज्ञा

हो, उसे मैं पूर्ण करूंगा।" महर्षि ने उत्तर में महाराज से राम और लच्मण को मांगा और कहा कि राम-लच्मण धनुर्विद्या में प्रकाण्ड हैं। वे सहज ही राक्षसों का नाश कर सकेंगे। यज्ञ की समाप्ति पर उन्हें सकुशल यहां पहुंचा दिया जायगा।

महर्षि विश्वामित्र राम-लच्मण को साथ लेकर अपने तपोवन की ओर चल दिये। जब वे तपोवन के निकट पहुँचे, तो ताड़का नाम की राक्षसी आकाश-मार्ग से आती हुई दृष्टि-गोचर हुई। महर्षि ने राम-लच्मण को सावधान करते हुए ताड़का-वध का आदेश किया और उसी क्षण राम-लच्मण ने अपने तीखे बाणों द्वारा उसका अन्त कर डाला। इस प्रकार राम-लच्मण ने महर्षि के तपोवन में यज्ञ की रक्षा करते हुए अनेक राक्षसों को मार डाला और समय पाकर महर्षि का यज्ञ भी निर्विघ्न समाप्त हो गया।

महर्षि विश्वामित्र ने राजा जनक की प्रतिज्ञा सुन रखी थी! मन ही मन उन्होंने राम को सीता के योग्य ठहराया और वे राम-लच्मण को लेकर राजर्षि जनक के यहां पधारे। वहां पहुँच कर जब रामचन्द्र से जनक की प्रतिज्ञा की चर्चा की गई तो उन्होंने धनुष देखने की इच्छा प्रकट की। राम को धनुष दिखाया गया और राम ने सहज ही शिव-धनुष को उठा कर बायें हाथ से प्रत्यंचा चढ़ा दी। तदनन्तर उन्होंने तीर चलाने के निमित्त गुण खींचा ही था कि धनुष दो टूक होकर धरती पर गिर पड़ा। अब तो दर्शकों की प्रसन्नता का पारावार न रहा। राम और उनकी वीरता का सभी बखान करने लगे। जनक की प्रतिज्ञानुसार सीता ने विजयी राम के गले में वर-माला पहना दी। सीता—राम के सम्मिलन से मानो प्रकृति ने सुषमा बिखरा दी। सभी दिशाओं ने मूक-भाव से मंगल-गान गाये।

तदनन्तर राजर्षि जनक ने महाराज दशरथ को सादर आमन्त्रित

किया और यथासमय महाराज दशरथ भरत और शत्रुघ्न के साथ मिथिला पहुँच गये। जनक ने सीता का राम के साथ, लक्ष्मण का उर्मिला से और अपने छोटे भाई कुशध्वज की माण्डवी एवं श्रुकीर्ति—दो कन्याओं से क्रमशः भरत तथा शत्रुघ्न का विवाह कर दिया।

वनवास—पुत्र एवं पुत्र-बधुओं सहित मिथिला से लौट आने पर महाराज दशरथ सानन्द अयोध्या में राज-काज करने लगे। राज महलों में प्रसन्नता और आह्लाद छाया रहता। प्रजा सुखी थी। राजपुत्रों ने अपने स्वभाव से प्रजा का मन मोह लिया था। इसलिए प्रजा दशरथ और उनके पुत्रों की प्रशंसा करती नहीं थकती। राजधानी में चारों ओर मङ्गल गीत गाये जाते थे।

महाराज दशरथ वृद्धावस्था को प्राप्त हो रहे थे। अब उनकी इच्छा थी कि श्री रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक कर दिया जाय। सो, तदनुसार तैयारियां होने लगीं। प्रजा ने सुना तो प्रसन्नता—वश बावली-सी हो उठी। राज-महलों में श्री राम के राजतिलक का समाचार मानो आनन्द की वृष्टि करने लगा। फलतः दिन और मुहूर्त्त निश्चित् हो गया। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दृष्टिगोचर हो रहा था। किंतु एक ही व्यक्ति ऐसा था, जो इस समाचार से मन ही मन कुढ़ रहा था और वह थी कैकेयी की कुब्जा दासी मंथरा।

मंथरा आप से आप सोचने लगी कि अब कैकेयी को राज-माता कौशल्या के आधीन होकर रहना पड़ेगा। राम के राजा बन जाने पर भरत को कोई भी नहीं पूछेगा। जिस कैकेयी का अब तक सर्वोपरि मान है, राम के राजा होने पर तो उसका मान हो ही नहीं सकेगा। इस प्रकार की भावनाओं से मन ही मन बल खाती

हुई मन्थरा कैकेयी के पास पहुंची और बोली, "भोली रानी, राम राजा बनने जा रहे हैं।" कैकेयी ने संवाद सुनते ही मंथरा को मोतियों का हार उपहार में दिया, किंतु उसने उपेक्षा पूर्वक वह हार परे फेंक दिया। मंथरा की इस उपेक्षा से रानी कैकेयी चिंतित-सी हो गई। अब क्या था, मन्थरा रानी की इस क्षीणता को भांप गई और उसने जो जी में आया बक डाला। फलतः कैकेयी के हृदय में ईर्षा जागी।

इधर राज्याभिषेक की पूर्ण सामग्री संगृहीत होने परमहाराज दशरथ अन्तःपुर में गये। उन्होंने देखा कि कौशल्या रामतिलक के लिए भगवान् से अर्चना कर रही है। और आगे बढ़कर वे कैकेयी के भवन में गये। वहां पहुंचते ही मानों उन पर वज्र-पात हो गया। कैकेयी की जीर्ण-शीर्ण अवस्था को देखकर महाराज चकित हो गये। उनकी सांस फूलने लगी। बहुत संभल कर उन्होंने पूछा, "इस मङ्गल-मुहूर्त के समय तुम्हें किसने कष्ट पहुंचाया है, ऐसी दशा क्यों?"

किंतु महारानी चुप रही। अन्त में महाराज के बहुत मनाने पर कैकेयी ने कहा "महाराज, आपने मुझे दो वर प्रदान करने की प्रतिज्ञा दे रखी है। आज मुझे वह वर प्रदान करें।"

महाराज ने कहा—"बस, इतनी-सी बात है। तुम जो मांगो, वही मैं दूंगा।" महाराज दशरथ को क्या मालूम था कि इस मांगने में ही निकट भविष्य में होने वाला महा-अनर्थ अंतर्हित है।

महाराज को दृढ़ देखकर कैकेयी ने कहा, "प्रथम वर तो यह दीजिये कि भरत को अभिषिक्त किया जाय और दूसरे वर के अनुसार राम को चौदह वर्ष पर्यन्त वनवास की आज्ञा दें।

इतना सुनते ही महाराज मूर्छित हो गये। कुछ चेतना होने पर उन्होंने कैकेयी से कहा, तुम कोई दूसरा वर मांगो। श्रीराम प्रजा के प्यारे हैं। इन्हें सब कोई प्यार करता है। भरत की नायीं श्रीराम को भी तुम से अनुराग है। उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? तुम उस का अहित क्यों चाहती हो?" इस प्रकार समझाने बुझाने पर भी कैकयी पर कोई प्रभाव न हुआ और वह अपने निश्चय पर दृढ़ रही। इस प्रकार महाराज की दशा चिंतित होने लगी। उन्हें मूर्च्छा पर मूर्च्छा होने लगी।

इधर यह संवाद श्रीराम के कानों तक भी पहुँच गया और पिता की आज्ञा का पालन करने को उद्यत हो गये। श्रीराम माता कौशल्या से आशीर्वाद लेने गये तो दासी ने कहा कि वह पूजा कर रही है। श्रीराम ने वहीं जाकर माता के चरण स्पर्श किये और उन्हें बताया कि आज के आनन्दोत्सव में विघ्न आ पड़ा है। और तब श्रीराम ने माता को सारा वृत्तांत सुना दिया। सुनते ही माता हा-हाकार कर विलाप करने लगी। श्रीराम ने अपनी माता को सांत्वना दी और पश्चात् अपनी प्रियतमा सीता के पास गये।

सीता ने जब सारा वृत्त सुना तो वह भी पति के साथ वन चलने को तय्यार हो गईं। रामचन्द्र सीता को साथ नहीं ले जाना चाहते थे और सीता के आग्रह पर भी जब श्रीराम न माने तो उसने कहा, "श्रेष्ठ, आप विज्ञ हैं, वीर हैं, आपका प्रताप सूर्य की नायीं चमत्कृत हो रहा है। जब आप मुझे यहीं रहने का आदेश कर रहे हैं, तो इस का कारण यही तो है कि आपको मेरे कष्टों की चिन्ता है। किन्तु स्वामी क्या आप नहीं जानते कि पत्नी की शोभा पति है। पत्नी पति की छाया है और छाया होते हुए क्या यह सम्भव है कि वह उससे विभिन्न

हो सके। आपका सुख-दुख, आपका ऐश्वर्य—मेरा भी सुख-दुख और ऐश्वर्य है। स्वामी के बिना स्त्री की वही दशा होती है, जो जल के बिना मछली की। जिस कुल में मैंने जन्म लिया है, वह श्रेष्ठ है। मैं यदि इस समय आपका साथ न दूं तो मैं धर्म-पथ से विचलित हो जाऊंगी।"

सीता से दाम्पत्य-धर्म की चर्चा सुन कर श्री राम स्नेहभाव से बोले, "जिस धर्म की तुम चर्चा कर रही हो वह सत्य है, किन्तु वन में जिस कठोर जीवन की साधना करनी होगी, उससे सम्भवतः तुम परिचित नहीं। तुम्हारा कोमल शरीर बीहड़ वनों के कष्टों को सहन नहीं कर सकेगा। प्रचण्ड-आतप और जल के अभाव में प्यास से व्याकुल होने पर जो यातना होगी, उसका अनुमान तुम नहीं कर सकतीं। इसके अतिरिक्त वनों में हिंसक पशुओं एवं राक्षसों के उपद्रवों से तुम सहज ही भयभीत हो सकती हो। सीते, तुम्हारी कमल-सी मुख-श्री फीकी पड़ जायगी। मेरे दुर्भाग्य के कारण तुम्हें वन में जो कष्ट होंगे, उनका ध्यान करते ही मैं कांप जाता हूं। इसीलिए मैं कहता हूं कि तुम वन में मेरे संग न चलो। तुम माता जी की सेवा में रहो, इसी में मेरा कल्याण है।"

श्रीराम के ऐसे प्रवचनों को सुनकर सीता सगर्व बोली, आर्य पुत्र, क्या मैं क्षत्राणी नहीं? आपके मुखारविन्द से भय के शब्द सुन कर मुझे आश्चर्य हो रहा है। क्या आप समझते हैं कि मैं आपके सुख की ही केवल भागीदार हूं? आपसे अलगरह कर मुझे स्वर्ग की भी कामना नहीं। बीहड़ वनों में यदि भीषण कष्ट होंगे, तो आपके संग रहते वे सब मुझे सुख-रूप ही होंगे। मैं राक्षसों और हिंसक पशुओं से डर जाऊंगी, ऐसा विचार भी आप क्यों करते हैं? मुझे इस बात का गर्व है कि मैं उस वीर की पत्नी हूं, जिसने ताड़का का वध किया, जिसने महाबली परशुराम का बल मर्दन किया,

जिसने शिव-धनुष को फूल की भांति सहज ही उठा कर दो टूक कर दिया। ऐसे वीर पुरुष की पत्नी वन में भयभीत हो सकेगी, असम्भव है।

"सूर्य के घोर ताप से जब मैं प्यास से व्याकुल हूँगी, तो आपका प्रेम-वारि मुझे तृप्त कर देगा। आपके प्रत्यक्ष दर्शनों से मेरा संसार सदैव आनन्द में भूला-सा रहेगा। नाथ, शरीर छाया से विलग नहीं हो सकता। आप शरीर हैं, मैं छाया हूँ।"

सीता के दृढ़ एवं विनम्र भावों को सुनकर श्रीराम अधिक आना-कानी न कर सके—और उन्होंने सीता को साथ चलने की स्वीकृति दे दी। इसके अतिरिक्त भ्रातृ-भक्त लक्ष्मण भी राम सीता के साथ चलने को उद्यत हो गये और जब माता सुमित्रा ने सुना तो उन्होंने सहर्ष स्वीकृति देते हुए कहा, "वत्स लक्ष्मण राम को सदैव पिता-तुल्य जानना और सीता को मेरे समान। दोनों की आज्ञा और सेवा में संलग्न रहना ही तुम्हारा धर्म है। बेटा, इस साधना को पूर्ण करोगे तो मैं धन्य हूँगी।"

इसके अनन्तर राम और लक्ष्मण ने वनवासी के वेश धारण कर लिए और पिता, माताओं एवं अन्य गुरुजनों को यथावत् प्रणाम कर वन-यात्रा को प्रस्तुत हो गये। एक ही दिन पूर्व जिनका राजतिलक होना था, आज वे वल्कल धारण किये वन को जा रहे थे; जिस कोमलाङ्गी ने कभी कठोर भूमि पर पांव तक नहीं रखा था, आज उसे बीहड़ वनों की पैदल यात्रा के लिए अग्रसर होते देख कर किसका हृदय नहीं पसीज जायगा। इस दृश्य को देखकर अयोध्यावासियों की आंखों से अश्रु धारा बह रही थी। प्रत्येक अयोध्यावासी अनुभव कर रहा था, जैसे उनका आत्मीय उनसे अलग हो रहा है। इतने में

सुमन्त रथ लेकर वहां आ पहुँचा और तीनों उस पर बैठ गये।

रथ चलने के कुछ ही क्षणों बाद महाराज दशरथ को चेतना हुई और वे रथ के पीछे हा राम–हा राम करते हुए दौड़े, किन्तु गिर गये। अयोध्या के सहस्रों नर-नारी रथ के पीछे-पीछे भागे जा रहे थे। राम ने बहुतेरा चाहा कि वे लोग लौट जाएं, किन्तु सुनता कौन था। अन्त में संध्या समय अयोध्या से ५-६ योजन के अन्तर पर पहले दिन का पड़ाव डाला गया।

रात के समय जब सब लोग गहरी नींद सो रहे थे, तो श्रीराम ने सुमन्त को जगाया और रथ जुतवा कर लक्ष्मण-सीता सहित आगे की ओर बढ़े। इस प्रकार अयोध्यावासियों को सोते में ही छोड़ कर श्रीराम निकल भागे। प्रातः समय जब सब लोग जागे तो राम को न पाकर भारी हृदय से अयोध्या लौट आये।

चलते-चलते राम, लक्ष्मण और सीता गङ्गा तट पर शृङ्गवेरपुर पहुँचे। वहां का राजा गुह श्रीराम का स्वागत करने के निमित्त आया और उस रात रामचन्द्र वहीं गङ्गा तट पर रहे। प्रातः होने पर सुमन्त को समझा बुझा कर लौटा दिया और अब उन्होंने पैदल यात्रा आरम्भ कर दी। सीता जी पैदल चलने की अभ्यस्त तो थीं नहीं, सो थोड़ी-थोड़ी दूरी पर जाकर उन्हें विश्राम करना पड़ता था। इस प्रकार विश्राम करते हुए तीनों चित्रकूट पर्वत पर पहुँच गये। हरे-भरे वृक्षों से आच्छादित चित्रकूट की शोभा ही निराली थी। चित्रकूट पर के बादलों के समूह, शीतल पवन, प्रकृति का निखार और शांत वातावरण को पाकर राम, लक्ष्मण और सीता पुलकित हो गये। अयोध्या के सुख जैसे उन्हें भूलने लगे।

सीता-हरण—भरत के लौट जाने पर श्री रामचन्द्र ने सोचा कि अयोध्यावासियों को इस स्थान का पता चल गया है और वे समय-समय पर आकर हमारी साधना में बाधा उपस्थित करेंगे, इसलिए इस स्थान को छोड़ ही देना चाहिए। फलतः भारद्वाज मुनि के आदेशानुसार उन्होंने दण्डकारण्य में गोदावरी के तीर पर पंचवटी में आश्रय लिया। उचित स्थान देख कर लक्ष्मण जी ने वहां एक पर्ण-कुटी निर्मित कर दी। यह पर्णकुटी दण्डकारण्य में ऐसी जान पड़ती थी, जैसे वनदेवी का राज-प्रासाद हो। चारों ओर वन-पुष्पों की लह-लहाती बेलें हंस-हंस कर सीता का स्वागत करती थीं। शीतल एवं सुखदायी समीरण फूलों का स्पर्श करके सीता को वनवास का दारुण-दुख भूल जाने का मौन-सन्देश सुनाता। प्रकृति की कोमल-अङ्क में सीता वन देवी की भांति विहार करती। हरित-वृक्षों की फल-फूल एवं पत्तों से झुकी डालियों में उड़-उड़ चह-चहाते पक्षियों का कलरव सुन कर सीता जी खो-सी जातीं।

पास ही कल-कल करती गोदावरी अविरल-गति से बहती थी। श्रीराम और सीता पर्णकुटी में रहते और भ्रातृ-भक्त लक्ष्मण रात के समय कुटी की चौकसी करते। इस प्रकार सीता जी वन में अपनी गृहस्थी के सुख पूर्ण दिन बिता रही थीं। अयो-ध्या का राजसी-सुख उन्हें भूल-सा गया, किंतु यह सुख भी तो विधि से न देखा गया और इस विनोद-जगत में दुःख की रेखा खिंच गई।

इसी दण्डकवन में लंका के राजा रावण की बहन शूर्पणखा भी रहती थी। एक दिन शूर्पणखा श्रीराम के आश्रम में आ निकली। श्रीराम के रूप को देख कर वह उन पर मोहित हो गई और उन्हें

अपने साथ विवाह कर लेने की प्रेरणा करने लगी। श्रीराम ने शूर्पणखा, को समझाया भी, किन्तु वह पापिन न मानी और सीता जी को अपने प्रेम में बाधक समझ कर उन पर झपटी। भला लक्ष्मण के होते हुए राम अथवा सीता पर कौन आंख उठा सकता था। सीता जी राक्षसी के इस आक्रमण से भयभीत होगईं और उनकी कमल सी मुख-श्री फीकी पड़ गई। इस पर लक्ष्मण जी ने शूर्पणखा को इस कु-कृत्य का दण्ड देने के लिए उसके नाक-कान काट लिए।

शूर्पणखा की इस दशा को देख कर उसके रक्षक खर और दूषण राक्षसों के दल-बल सहित राम-लक्ष्मण पर टूट पड़े। किंतु राम-लक्ष्मण ने सहज ही सब का अन्त कर डाला। अब तो श्रीराम दण्डकवन में रहने वाले राक्षसों के काल-सम हो गये।

इधर शूर्पणखा नाक-कान कटा कर अपमानित हुई अपने भाई रावण के पास पहुंची। रावण ने जब बहन की ऐसी दशा देखी तो वह क्रोध से पागल हो गया। अपनी बहन के अपमान का बदला लेने के लिए वह क्रोध से कांपने लगा। आवेश में आ रावण ने कहा, "त्रिलोकी को जीतने वाले रावण की बहन की ऐसी दशा किस तुच्छ ने की ? मैं उसे अवश्य दण्ड दूंगा।" तब शूर्पणखा ने कहा, "महाराज, दण्डक-वन में दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण तापसी रूप में रहते हैं। उनके साथ एक परमसुन्दरी स्त्री है। उसे देख मैंने सोचा कि यह तो राम के योग्य नहीं इसका स्थान तो देवताओं के शासक रावण के अन्तःपुर में ही है। इसी उद्देश्य से मैं वहां गई थी, किंतु राम के छोटे भाई लक्ष्मण ने मेरे नाक-कान काट कर मेरी यह दशा कर दी है।

इसके अतिरिक्त खर-दूषण तथा अन्य सहस्रों राक्षसों को भी उन्होंने मार डाला है।"

एक ओर अपनी बहन का अपमान और दूसरी ओर खर-दूषण आदि का नाश सुन कर रावण आपे में न रह सका। उसने शूर्पणखा को अपनी वीरता के बखान करते हुए अनेक आश्वासन दिये। किंतु उसके मन में एक महान चिंता ने घर कर लिया था और इसी हेतु वह रात भर सो भी न सका। राम-लक्ष्मण को जीतने और सीता-हरण की मंत्रणा निश्चित कर अकेला ही रावण पुष्पक विमान पर मारीच के पास समुद्रतट पर पहुँचा। रावण ने मारीच को संपूर्ण घटना सुनाई और उसे कपट-मृग का रूप धारण करने को कहा।

पश्चात् दोनों पुष्पक विमान द्वारा पर्णकुटी के पास चित्र-कूट पहुँचे और मारीच सुवर्ण मृग का वेश धारण कर पर्णकुटी के आस-पास चक्कर काटने लगा। सीता ने जब उस सुन्दर मृग को देखा तो वह उस पर मोहित हो गईं और श्रीराम से बोलीं, "यह कैसा सुन्दर मृग है। कृपया इसे पकड़ कर मुझे ला दीजिये।" अपनी स्नेहमयी पत्नी की इच्छा पूर्ति के लिए श्रीराम धनुष-बाण को लेकर मृग के पीछे हो लिए और लक्ष्मण को सीता की रक्षा का भार सौंप गए।

रामचन्द्र को आता देख कर कभी तो मृग उनके निकट आ जाता और फिर दूर हो जाता। कभी प्रकट हो जाता और कभी छिप जाता। इस प्रकार छल-प्रवंचना करता हुआ कपटमृग श्रीराम को पर्णकुटी से बहुत दूर ले गया। श्रीराम उसे हरी-हरी दूब दिखा कर पकड़ लेना चाहते थे, किंतु जब वे बहुत दूर आ गये तो

उन्होंने साध कर ऐसा बाण मारा, जिसके लगते ही वह भयंकर शब्द करके भूमि पर गिर पड़ा। बाण लगते ही मृग अपने वास्तविक राक्षस-रूप में आ गया और उसने "हा लक्ष्मण—हा सीते" कह कर प्राणों का परित्याग कर दिया। रामचन्द्र राक्षस के मायावी ढंग को देख कर चकित रह गये और शीघ्र ही कुटी को लौट पड़े ।

इधर राम को आने में बहुत विलम्ब होते देख कर तथा "हा लक्ष्मण—हा सीता" शब्दों की ध्वनि सुन लेने के पश्चात् सीता व्याकुल हो उठी । उन्होंने लक्ष्मण से कहा, "तुम शीघ्र जाओ तुम्हारे भाई संकट में पड़ गये हैं । उनकी सहायता करो ।" लक्ष्मण सीता की ऐसी बात सुनकर हंस दिये और बोले, "जिनकी भ्रकुटिविलास मात्र से ही सृष्टि में प्रलय हो सकती है, वे श्रीराम स्वप्न में भी संकट में नहीं पड़ सकते ।"

इस पर सीता ने लक्ष्मण को अनेक ऐसे दुर्वचन कहे, जिन्हें सुनकर उन्हें सीता को अकेली छोड़ कर जाना ही पड़ा, किंतु जाने से पूर्व लक्ष्मण ने नम्रता पूर्वक कहा, "माता आपने स्त्री-स्वभाववश जो शब्द कहे हैं उन्हीं के कारण मैं अपने बड़े भाई की आज्ञा का उल्लंघन करके उनकी खोज में जा रहा हूं । मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि शीघ्र ही कोई नया संकट आने वाला है ।" इतना कह कर लक्ष्मण अपना धनुष-बाण लेकर श्रीराम की खोज में निकल पड़े

रावण ऐसे ही अवसर की ताक में बाट जोह रहा था । सीता को अकेली पाते ही सन्यासी रूप में वह पर्णकुटी के द्वार पर जा पहुँचा । सीता ने संन्यासी आया जान कर गृहस्थ-धर्मानुसार

उसका स्वागत करना चाहा । इस पर छद्‌मवेशी रावण ने कहा "सुन्दरी, तुम कौन हो और तुम इस प्रकार बीहड़ वन में क्यों अधि-वास करती हो ?"

सीता ने सहज भाव से उत्तर दिया, " मैं अयोध्यापति महाराज दशरथ की पुत्रवधू हूं । जिनके पावन नाम से पातक तक का उद्धार हो जाता है, उन्हीं श्रीराम की मैं पत्नी हूँ ।"

इस पर रावण ने अपना वास्तविक रूप प्रकट करते हुए बताया कि मैं लंकापति, और देवताओं में सिरमौर रावण हूं । तुम्हारे अप्रतिम-सौंदर्य को देखकर मुझे खेद हो रहा है कि तुम राम-से साधारण व्यक्ति के साथ दुखदायी जीवन बिता रही हो । तुम मेरे साथ चलो और मैं तुम्हारी पूजा करुंगा, तुम्हें रानियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान दूंगा ।

सीता जी यह सुन कर क्रोध से कांप गईं । उन्होंने जब यह जाना तो वे किङ्कर्तव्य-विमूढ़ हो गई । वह कुछ भी न निश्चय कर सकीं, किन्तु साहस करके उन्होंने रावण से कहा कि दुष्ट, तू नहीं जानता, प्रभु राम अभी आ रहे हैं और वे तुझे अभी तेरी नीचता का दण्ड देंगे ।

इस पर रावण ने सोचा कि यदि मैंने और विलम्ब किया तो राम-लक्ष्मण आ ही न जांय । यह सोच उसने आवेश में सीताजी को बलपूर्वक रथ में बैठा लिया और आकाश मार्ग से चल पड़ा । सीता जी असहाय दशा में विलाप करती हुई पुकार रही थीं । लक्ष्मण को उन्होंने जो दुर्वचन कहे थे, उन्हें स्मरण कर सीता जी संताप कर रही थीं ।

विलाप करती हुई वैदेही आकाश-मार्ग से जा रही थीं । यह

विलाप गृध्रराज जटायु ने सुना तो पहचान लिया कि रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्र की पत्नी हैं। उसने देखा कि रावण बलपूर्वक जानकी को लिए जा रहा है। फलतः जटायु ने ललकारते हुए कहा, "अरे नीच दुष्ट, ठहर। तूने सती सीता का जो अपमान किया है, उसका दण्ड तुझे अभी देता हूं। यद्यपि मैं बूढ़ा हो गया हूं तथापि सहज ही तू जानकी जी को ले जा न सकेगा।" और सीता को आश्वासन देते हुए कहा, "पुत्री, भय मत कर। मैं इस राक्षस का अभी नाश करूंगा।" और इतना कहकर जटायु रावण पर झपटा। जटायु ने रावण को केशों से पकड़ कर विमान से उतार लिया इस पर रावण ने विकराल रूप धारण कर भीषण कटार से जटायु के पंख काट डाले। जटायु का अन्त करके रावण सीता सहित पंपा सरोवर पर से होता हुआ, नदियों और पर्वतों को लांघ कर समुद्र पार लङ्का में जा पहुंचा। इस बीच सीता जी ने भी और कोई उपाय न देख मार्ग में जहां-तहां अपने आभूषण उतार कर फैंकने आरम्भ कर दिये।

लङ्का पहुंच कर रावण ने सीता को अपने अतुल ऐश्वर्य का दिग्दर्शन कराते हुए प्रेरणा की कि मैं आजीवन तुम्हारा दास बन कर रहूंगा। इस प्रकार रावण ने अनेक ऐसे प्रयत्न किये कि सीता जी फुसलाहट में आजायें, किन्तु सती सीता भला कब ऐसी बातें सहन कर सकती थीं। उन्होंने कहा, "नीच, तेरी मति भ्रष्ट होगई है और काल तेरे सिर पर मण्डरा रहा है इसी हेतु तूने ऐसा पातक-कर्म किया है। रघुवीर की क्रोधाग्नि में तू और तेरी लङ्का शीघ्र ही भस्म हो जायगी। इस पर रावण ने सीता जी को एक वर्ष की अवधि दी और कहा कि इस बीच यदि तूने आत्म-समर्पण न किया तो तेरे जीवन की रक्षा असम्भव है। उपरांत राक्षसियों को रावण ने आज्ञा दी कि

वह सीता जी को अशोक वन में रखें और जैसे-तैसे सीता जी को आत्म-सम्पर्ण कीप्रेरणा करती रहें।

× × ×

श्री रामचन्द्र मायावी मृग को मार कर तीव्र गति से पर्णकुटी को लौट रहे थे। मार्ग में ही लक्ष्मण से उन की भेंट हुई, तो उन्हें किसी अनहोनी घटना की चिन्ता-सी हो गई। उन्होंने कहा, 'भाई लक्ष्मण, मेरे आग्रह पर भी तुम जानकी जी को अकेली छोड़कर चले आए, क्यों?' और फिर बोले, मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि 'सीता पर्णकुटी में नहीं है।' लक्ष्मण ने विनयभाव से सब कह दिया और उपरांत दोनों भाई पर्णकुटी में पहुंचे। वहां सीता को न पाकर एकाएक व्याकुल हो गये और सीता जी की खोज में इधर-उधर भटकने लगे।

पर्णकुटी से कुछ ही अन्तर पर जटायु पड़ा कराह रहा था। उसने बताया, "दुष्ट राक्षस रावण ने सीता जी का बलपूर्वक अपहरण किया है। मैंने सीता जी को छुड़ाने की चेष्टा की थी, किन्तु मैं असफल रहा। आप को यह संवाद देने के लिए ही ज्यों-त्यों जीवित था, और अब मैं विदा होता हूं।" जटायु की मृत्यु हो जाने पर राम-लक्ष्मण ने उसका यथोचित दाह-संस्कार किया और तब दोनों भाई खोजते-खोजते आगे बढ़े। ऋष्यमूक पर्वत निकट आ गया। वहां मन्त्रियों सहित सुग्रीव रहते थे। उन से भेंट होने पर श्रीरामचन्द्रजी ने उन्हें वचन दिया कि हम तुम्हें बाली से राज्य दिला देंगे और तुम सीताजी की खोज में हमारी सहायता करना। तदनुसार श्रीराम की सहायता से सुग्रीव ने बाली का अन्त किया और स्वयं किष्किन्धा का स्वामी बना। अब सुग्रीव ने अपनी सारी सेना सीता जी की खोज में भेज दी और नील,

अङ्गद, जाम्बवान और हनुमान को दक्षिण दिशा की ओर सीता जी को खोजने का भार सौंपा।

वे सब खोजते-खोजते समुद्र तट पर जा पहुंचे। हनुमान के अतिरिक्त और किसी में समुद्र पार जाकर लौट आनेकी शक्ति नहीं थी, इसलिए हनुमान लङ्का पहुंचे। हनुमान ने सारी लङ्का को छान मारा किन्तु सीता जी का कहीं भी पता न चला। बहुत देर तक खोज करते रहने पर उन्हें एक स्थान पर राक्षसियों के झुण्ड में घिरी एक नारी का भान हुआ। हनुमान वहां पहुंचे और जब उन्होंने एकान्त पाया तो वे उसी पेड़ पर जा बैठे, जिसके तले सीता जी गत कितने ही मास से विरह-दिवस बिता रही थीं। हनुमान ने देखा कि सीता जी के कमल-नेत्रों से अविरलगति से अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं। उनके नेत्र भूमि में गड़े-से जैसे किसी को खोज लेना चाहते हैं। हनुमान ने सीता जी की ऐसी दशा देखी तो उनसे और अधिक न देखा गया। फलतः हनुमान ने रामगुणकीर्तन आरम्भ कर दिया। राम-गुण-गान सुन कर सीताजी भयभीत हो गईं, क्योंकि उन्हें भय हुआ कि रावण ने फिर कोई माया जाल फैलाया है, किन्तु बाद में हनुमान ने अपना पूर्ण परिचय दिया एवं श्री राम की मुद्रा सीता जी को दी। राम-लक्ष्मण के कुशल-समाचार देने के अनन्तर हनुमान प्रसन्नता पूर्वक पुनः समुद्र पार कर वहीं आ गये, जहां अङ्गद आदि उन की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें प्रसन्न आते देख कर सब ने जान लिया कि हनुमान अपनी खोज में सफल हो गये हैं। सब लोग आनन्दोल्लास में श्री रामचन्द्र के पास पहुंचे और हनुमान ने सीता जी की सारी दशा का बखान कर दिया। रामचन्द्र सीता को दुखित जान कर बहुत उदास हुए, किन्तु इस समाचार को पा लेने पर निश्चेष्ट बैठ रहना उन्होंने अनुचित जाना और सुग्रीव को आज्ञा दी

कि सेना तय्यार करके शीघ्र ही लङ्का पर चढ़ाई कर देनी चाहिये।

सुग्रीव की सेना-सहित श्री राम-लक्ष्मण के आक्रमण के समाचार जब लङ्का में पहुँचे, तो विभीषण ने रावण को अनेक विधि समझाने की चेष्टा की, किन्तु उसकी बुद्धि में कोई भी बात न बैठी। विभीषण को उल्टे उसने अपमानित किया। इधर श्रीराम सेना सहित समुद्र तट पर आ गये और नल-नील ने अपने चातुर्य से समुद्र पर पुल बांधा। इसके द्वारा सारी सेना लङ्का पहुँच गई। कई दिन तक भीषण युद्ध होता रहा। रावण के अनेक योद्धा मारे गए। उसका पुत्र मेघनाद भी काल-ग्रास हुआ और सब से अन्त में स्वयं दशानन रावण का भी अन्त हो गया। इस प्रकार श्रीराम ने लङ्का पर विजय पाकर विभीषण को वहां का राज्य सौंप दिया और हनुमान को आदेश किया कि वह जाकर सीता जी को रावण-वध का संवाद सुना दे।

अग्नि-परीक्षा—सीता जी ने जब यह समाचार सुना तो उनके नेत्र-द्वय में से मोती-से दो बिन्दु ढलक पड़े। इतने दिनों से जो मुख-कमल रामरूप वारि के बिना मुरझा गया था, उसमें कांति-सी आती दीख पड़ने लगी। प्रसन्न-वदना सीता ने हनुमान से कहा, "वत्स अपनी प्रसन्नता को मैं किन शब्दों द्वारा प्रकट करूं, यही समझ में नहीं आ रहा। मैं चाहती हूं, तुम्हें संवाद देने के फलरूप पारितोषिक देकर आत्म-संतोष करूं, किन्तु विवश हूं।"

इसके अनन्तर हनुमान ने पहरा देने वाली राक्षसियों को मारना चाहा, किन्तु देवी सीता ने कहा, "इनका दोष नहीं। यह तो केवल अपने स्वामी की आज्ञा-पालन करती रही हैं। इन्हें मारने से लाभ?"

हनुमान जी ने यह शब्द सुने तो सीता जी की उदारता को मन ही

मन प्रशंसा करने लगे। कुछ समय तक बातचीत करने के बाद हनुमान ने जाने की आज्ञा मांगी। इस पर सीता जी बोलीं, "वत्स, जिन पतिदेव को मैंने एक क्षण भी नहीं भूला, जिनके विरह में मैंने इतने दिन आज ही की आशा में बिताये हैं उन्हीं आर्य पुत्र के दर्शनों के लिए मेरा मन अधीर हो रहा है।"

सीता के इन व्याकुलतापूर्ण शब्दों को सुन कर हनुमान ने शीघ्र ही रामचन्द्र जी से सीता का संवाद कहा। ऐसा सुन कर श्रीराम चिन्तातुर हो गये और उन्होंने विभीषण से सीता जी को लिवा लाने के लिये कहा। आज्ञा पाकर विभीषण ने सीता जी को निवेदन किया कि वे श्रीराम के दर्शनों को चलें। फलतः विभीषण-पत्नी सरमा ने सीता जी का शृङ्गार किया और सीता जी पतिदेव के दर्शनों को निकलीं।

दस मास के बाद सीता का उल्लसित मुख-कमल देख कर श्रीराम खोये-से बोले, "जिस महान् आशा को हृदय में रख कर मैंने यह कार्य किया, आज वह पूर्ण हुई। मुझे अपनी सफलता पर आज जो आनन्द हो रहा है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। मेरी साधना आशा में परिणत हुई है, इस से बढ़कर साधक को क्या चाहिये! हम जिस बात को कभी सोच न सके थे, वह हुई और उसके परिणाम स्वरूप मैंने शूर की नाईं अपना कर्त्तव्य पालन किया। तुम मुझे प्राण से भी अधिक प्यारी हो, किन्तु नीति-मर्यादा को समक्ष रखते हुए तुम्हें इस प्रकार ग्रहण करने में असमर्थ हूँ। रावण ने तुम्हारा बल-पूर्वक हरण किया। उसने तुम्हारे शरीर को स्पर्श किया था। उसकी कुदृष्टि-वश ही यह सब काण्ड हुआ। अब तुम स्वतन्त्र हो, जहां चाहो, जिधर चाहो, तुम जाने में स्वच्छन्द हो।"

श्रीराम के ऐसे वचन सुनकर मानो सीता पर ज्वालामुखी का पहाड़ टूट पड़ा। सीता जी ने अनुनय-भाव से कहा, "आर्य पुत्र! मैंने एक क्षण के लिये भी पर-पुरुष का ध्यान नहीं किया। आप साधारण पुरुष की नाईं मुझ से व्यवहार कर रहे हैं। आपको इस युद्ध के कारण जो कष्ट हुआ, उस हेतु सम्भवतः आप विचलित हो गये हैं। आप निर्दोष पत्नी को त्याग कर वंश के मान की रक्षा करने जा रहे हैं, क्या यह आपको शोभा देता है? आप कहते हैं, "मैं आपको प्राणों से भी प्यारी हूँ" किन्तु प्राणों से भी अधिक प्रिय के साथ क्या आपका यह व्यवहार उचित है मेरा मान सदैव आपकी भक्ति में लीन रहा है। मेरा जीवन आप ही की कृपा पर अवलम्बित है।"

इतना कह कर सीता जी ने आशान्वित नेत्रों से श्री राम की ओर देखा, किन्तु रामचन्द्र अविचलरूप में स्थिर थे। उन्हें जैसे सीता के कहे से संतोष न हुआ। इस पर सीता जी ने विनीत भाव से लक्ष्मण से कहा, "तुमने मेरे लिये आज तक अनेक कष्ट सहन किये हैं। जिन पतिदेव के चरणों के अतिरिक्त अन्य किसी की भी मेरे नेत्रों में छाया तक नहीं पहुँच सकी, जब वहीं मेरा परित्याग करना चाहते हैं, तो मेरे जीवन की आवश्यकता ही क्या? लक्ष्मण, मेरे लिए चिता का प्रबन्ध करो।"

इस पर लक्ष्मण ने रामचन्द्र के मुख की ओर देखा, किन्तु वे उसी भांति स्थिर थे। उनकी ऐसी भावना से लक्ष्मण जान गये कि रामचन्द्र को चिता बनाने में कोई आपत्ति नहीं। तदनुसार चिता का प्रबन्ध किया गया। चिता बन जाने पर सीता ने पति को यथोचित प्रणाम किया और चिता की प्रदक्षिणा करके हाथ जोड़ कर बोलीं,

"यदि मैंने स्वप्न में भी मन, वचन और शरीर से रघुवीर के अतिरिक्त किसी अन्य का ध्यान-मात्र भी किया हो तो मेरा नाश हो जाय। मैं जल जाऊं, जिस से मुझे पाप का पूर्ण दण्ड प्राप्त हो।"

इतना कह सीता जी धू-धू करती चिता-ज्वाल में कूद गईं। आस-पास खड़े सभी जन इस दृश्य को देख कर अश्रु प्रवाह न रोक सके, किन्तु कुछ ही क्षण बाद सबने देखा कि सीता के स्पर्शमात्र से प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला प्रशान्त सागर की नाईं शीतल हो गई। सीता जी की पवित्रता प्रत्यक्ष प्रमाणित हो गई।

तत्पश्चात् गम्भीर भाव से श्रीराम ने कहा, "देवी, जब मैं तुम्हें कठोर शब्द कह रहा था, तो उनका भीषण-प्रहार तो मेरे ही हृदय पर हो रहा था। मैं जानता था कि तुम पवित्र हो। तुम पतिव्रता हो। तुम अपने धर्म से कदापि विचलित नहीं हो सकतीं, किन्तु प्रजारंजन हेतु मुझे ऐसा करना ही चाहिए था। मैंने संसार को सीता के पतिव्रत धर्म की साक्षी देनी थी—और वह कृत्य पूर्ण हुआ। तुम उसमें सफल हुईं। अब तो तुम कुन्दन की नाईं पुनीत हो।"

रामचन्द्र के ऐसे वचनों से सीता जी सारी वेदना भूल गईं। उन्होंने आदरभाव से पति की चरण रज ली और उपस्थित लोगों ने मिलन के उपलक्ष में जयध्वनि से सब दिशाओं को मुखरित कर दिया। इसके पश्चात् निश्चित शुभ-मुहूर्त में दल-बल सहित रामचन्द्र अयोध्या के लिए चल पड़े।

अयोध्या में—श्रीरामचन्द्र अयोध्यापति हैं। अयोध्यावासी राम को पाकर धन्य हो गये हैं। प्रजा को सर्व प्रकार से संतुष्ट रखना ही श्रीराम अपना परम कर्त्तव्य जानते हैं। इसी लिए प्रजा के सुख-दुख को जानने के लिए उन्होंने दूत नियत कर रखे हैं।

इधर देवी सीता गर्भवती हुईं। एक दिन स्नेहभाव से सीता ने श्रीराम से निवेदन किया कि मेरी इच्छा तपोवन की ऋषि-कन्याओं से मिलने की है। ऐसा सुनकर रामचन्द्र ने सहर्ष स्वीकृति देते हुए कहा कि कल ही इसका प्रबन्ध हो जायगा और तुम लक्ष्मण के साथ चली जाना।

यह बातें हो ही रही थीं कि श्रीराम का विश्वासपात्र दूत–दुर्मुख आया। उसने रामचन्द्र को सूचित किया कि प्रजा में इस बात की चर्चा है कि महाराज ने व्यभिचारी रावण के घर में रही हुई सीता को कैसे ग्रहण कर लिया ? इस प्रकार लोग सीता जी के सतीत्व पर संदेह प्रकट करते हैं।

इन वचनों को सुन कर रामचन्द्र शोकातुर हो गये। उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। जिस सीता को अग्निपरीक्षा द्वारा सती प्रमाणित कर उन्होंने ग्रहण किया था, उसी के विषय में प्रजा के ऐसे विचारों से राम के हृदय में परिवर्तन हो गया।

फलतः उन्होंने अपने भाइयों को बुला कर उन पर अपने हृदय के भाव प्रकट किये। लक्ष्मण ने अनेक विधि राम को समझाने का प्रयत्न किया, किंतु जिस राम ने प्रजा-रंजन का कठोर व्रत धारण किया हुआ था, वह अपने विचार पर अटल रहे। लक्ष्मण को आज्ञा दी कि तुम सीता को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आओ। लक्ष्मण ने ज्येष्ठ-भ्राता की आज्ञा को शिरोधार्य किया और सीता को तपोवन ले जाने के बहाने तैयारियां होने लगीं। लक्ष्मण ने सुमन्त को रथ लाने की आज्ञा दी और वे सीता सहित वन को चले।

गंगा पार पहुंचने पर लक्ष्मण अपने को संभाल न सके। वास्तविकता उनके मुंह पर आ-आ कर रुक जाती है। बार-बार वे सोचते

थे कि सीता से राम का आदेश कैसे कहूँ। अन्त में लक्ष्मण ने कातर भाव से कहा, "मुझे कुछ कहना है।" लक्ष्मण के ऐसे भाव को देख कर सीता जी को किसी भावी-आशंका का साक्षात् दृष्टिगोचर हुआ। उन्होंने दुःखद-शब्दों में लक्ष्मण से कहा कि मेरा भाग्य ही विपरीत है। तुम मुझे जो कहना चाहते हो, क्यों नहीं कहते। तुम्हारा यह मौन मुझे और भी कष्टकर है।

इस पर लक्ष्मण ने दीनभाव से कहा, "आप इतने दिनों तक रावण के यहां रह चुकी हैं, इस से अयोध्या की प्रजा आप पर कलङ्क लगाती है। इसी बात को दृष्टि में रखते हुए श्रीराम ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं आपको महर्षि बाल्मीकि के तपोवन में छोड़ आऊं।" इतना कहते ही लक्ष्मण का गला भर आया। वे और कुछ न कह सके।

इधर सीता जी इन शब्दों को सुन कर मूर्च्छित हो गईं। चेत होने पर सीता जी विलाप करती हुई बोलीं, "विधि ने मुझे यह भी दिन दिखाना था और इसीलिए मैं आज लों जीवित हूं वत्स लक्ष्मण, इस में तुम्हारा कोई दोष नहीं। यदि मेरा भाग्य विपरीत न होता तो श्री रामचन्द्र को राजतिलक के दिन ही चौदह वर्ष का वनवास क्यों होता! मैंने पूर्व जन्म में न जाने कौन-से ऐसे कर्म किये हैं, जिन के कारण इस जन्म में मुझे ऐसे कर्म भोगने पड़ रहे हैं। आज मेरा जी करता है कि मैं आत्म-हत्या कर लूं, किन्तु मेरे उदर में पुनीत रघुकुल की भावी-संतति है, यही सोच कर ऐसा करने में मैं असमर्थ हूं!"

सीता के इस प्रकार के विलाप को सुन कर लक्ष्मण की आंखों से अविरल आंसू बहने लगे। इस पर सीता जी ने लक्ष्मण को आश्वासन प्रदान करते हुए कहा, "वत्स, मैं जानती हूं, उन्हें मुझ पर संदेह नहीं। उन्होंने जो कुछ किया है, केवल प्रजा रंजन के ही कारण। मेरा परित्याग करने पर उन्हें भी मेरी तरह महान् कष्ट हुआ होगा। वे आर्यपुत्र हैं।

आदर्श राजा हैं। आदर्श पति हैं। उन के इस महान् कष्ट में तुम सदैव उन को सांत्वना देना। आगामी जन्म भी यदि मेरा नारी-जन्म हो तो तुम-सा ही देवर मुझे प्राप्त हो। उन से निवेदन करना कि पत्नी-रूप में यदि उन्होंने मेरा परित्याग भी कर दिया है, तो प्रजा-रूप में अवश्य मेरी सुधि रखें।"

उपरांत लक्ष्मण ने सीता जी को यथाविधि प्रणाम किया और उन से विदा हुए। जब तक रथ आंखों के सामने रहा, सीता जी निर्निमेष दृष्टि से उस ओर देखती रहीं। अन्त में जब रथ आंखों से ओझल हो गया तो सीता जी पुनः विलाप करने लगीं। इधर महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्यों सहित वन से हो कर जा रहे थे। उन्होंने जब यह रुदन सुना तो उसी ओर गये। महर्षि ने देखते ही कहा, "बेटी जानकी, तुम्हें अधीर न होना चाहिये। मैं जानता हूं कि रामचन्द्र ने केवल प्रजाहित के लिए ही तुम्हारा परित्याग किया है। चलो, तुम मेरे आश्रम में रहो। तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा।"

महर्षि वाल्मीकि के स्नेह-पूरित शब्दों से सीता जी को कुछ सन्तोष हुआ वे महर्षि के तपोवन में रहने लगीं।

× × ×

यथासमय सीता के दो जुड़वा पुत्र उत्पन्न हुए। महर्षि ने नामकरण संस्कार द्वारा उन का नाम लव और कुश रखा। परित्यक्ता सीता दोनों होनहार पुत्रों को पा कर सारा दुख भूल गईं और उन्हीं के लालन-पालन में सारा समय बिताने लगीं।

जब वे बड़े हुए तो उन की शिक्षा का भार महर्षि पर ही पड़ा। महर्षि ने रामचन्द्र के जीवन के आधार पर रामायण नाम का काव्य-ग्रंथ लिखा था। फलतः लव-कुश को उन्होंने इस काव्य-ग्रंथ का गान

सिखलाया। इसके अतिरिक्त क्षत्रियोचित विद्याओं में भी महर्षि ने लव कुश को पारङ्गत कर दिया।

इन्हीं दिनों गुरु वसिष्ठ को आज्ञा से महाराज रामचन्द्र ने अश्व-मेध यज्ञ करने का निश्चय किया। फलतः बाल्मीकि के आश्रम में भी निमन्त्रण भेजा गया और महर्षि ने दोनों कुमारों को रामचन्द्र के अश्व-मेध यज्ञ में चलने को तैयार कर लिया। बात की बात में महर्षि ने निमन्त्रण लाने वाले से यह भी पूंछ लिया कि श्रीराम ने यज्ञपूर्ति निमित्त पत्नी के अभाव को क्योंकर पूर्ण किया है! इस पर उसने बताया कि गुरु वसिष्ठ ने उन्हें दूसरा विवाह करने को प्रेरणा की थी, परन्तु वे किसी भी प्रकार सहमत नहीं हुए। श्रीराम ने इस अभाव को सती सीता की स्वर्ण-मूर्ति स्थापित करके पूर्ण किया है।

लव और कुश ने जब माता से स्वीकृति चाही तो उन्होंने सहर्ष आज्ञा दे दी, किन्तु मन ही मन सोचने लगीं कि पत्नी-अभाव में रामचन्द्र के यज्ञ की पूर्ति क्योंकर होगी। परन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि उन की स्वर्ण-मूर्ति की प्रस्थापना द्वारा रामचन्द्र ने यज्ञ सफल करने का निश्चय किया है, तो उन्हें अपने पर गर्व हुआ।

यथावसर महर्षि बाल्मीकि लव-कुश सहित अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए अयोध्या जा पहुँचे। महर्षि ने लव-कुश को आदेश किया कि तुम घूम-घूम कर यज्ञ-मण्डल में रामायण-गान करना। गुरु की आज्ञानुसार दोनों कुमार वीणा सहित रामायण-गान करते रहे। समय पाकर रामचन्द्र के कानों तक भी यह समाचार पहुँच गया और उन्होंने महर्षि बाल्मीकि को बुलाकर दोनों कुमारों से गान सुनना चाहा। लव और कुश के सङ्गीत-माधुर्य पर श्रीराम मोहित हो गये। अपने जीवन की घटनाओं को सुन कर एकाएक उदास हो गये। अनन्तर रामचन्द्र ने महर्षि से दोनों कुमारों का परिचय पूछा। महर्षि ने

सविस्तार परिचय देते हुए बताया कि लव और कुश आप ही के पुत्र हैं। मैंने इन्हें सर्वप्रकार की शिक्षा देकर योग्य बनाया है। इन्हें स्वीकार करें और देवि सीता को भी पुनः ग्रहण करने की कृपा करें, क्योंकि सीता पवित्र हैं।

इस पर रामचन्द्र ने निवेदन किया, "महर्षि मैं जानता हूँ, सीता निर्दोष है। परन्तु प्रजा को सन्तुष्ट किये बिना मैं उसे कैसे ग्रहण कर सकता हूँ।"

फलतः सीताजी को महर्षि के आश्रम से ले आने के प्रबन्ध किये गये। माताजी गेरुआ वस्त्र धारण किये सभा-मण्डप में आईं। उन्हें बताया गया कि उन्हें भरी सभा में अपनी निर्दोषिता का प्रमाण देना होगा। इस पर सीता जी ने स्थिरभाव से हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की, "मां धरित्री, यदि मैंने स्वप्न में भी श्रीराम के अतिरिक्त पर-पुरुष का ध्यान-मात्र भी न किया हो तो मां, तुम मुझे अपनी अनन्त शांति-दायिनी गोद में ले लो।" सीता के यह वचन सुनते ही पृथ्वी-माता ने खण्डित होकर सीता को अपने गर्भ में विलीन कर लिया। सारा सभा मण्डप जय-ध्वनि से गूंज उठा।

संसार में सीता का चरित्र आदर्श है। पतिव्रत धर्म का जो आदर्श सीता ने उपस्थित किया है, वह उन्हीं का भाग था। अनेक भीषण आपत्तियों के समुपस्थित होने पर भी सीता पतिव्रत धर्म में अडिग रहीं। पति द्वारा अपमानित एवं परित्यक्ता होने पर भी मन-वचन-कर्म से पति भक्ति में ही रत रहीं, उन्होंने किसी भी समय पति के प्रति दुर्वचन कहना तो दूर रहा, विचार तक भी नहीं किया। सीता को इस महानता ने उसे, उसकी पतिभक्ति, उसकी धर्म-निष्ठा के लिए अमर कर दिया है।

— — —

पतिपरायणा गान्धारी

आर्य पतिव्रताओं में गांधारी का स्थान अत्यंत ऊंचा है। पातिव्रत्य के कारण ही नहीं अपने राजनैतिक ज्ञान के कारण, न्यायप्रियता के कारण भी गांधारी ने भारतीय इतिहास में अपना स्थान अमर किया है। महर्षि व्यास ने महाभारत में जिन नारी चरित्रों की सृष्टि की है गान्धारी उनमें सब से दिव्य है।

गान्धारी गान्धार (वर्तमान कंधार) देश के नरेश महाराज सुबल की पुत्री थी। बाल्यकाल से वह बड़ी धर्मपरायणा थी। भगवान् शिव उसके उपास्य देव थे। तपस्या के द्वारा गान्धारी ने शिव से अखण्ड सौभाग्य तथा शतपुत्रों का वर प्राप्त किया था।

गांधारी के रूप, गुण और धर्मिष्ठता की कीर्ति शन्तनु पुत्र भीष्म के कर्णगोचर हुई। उन दिनों उनके भाई धृतराष्ट्र और पाण्डु भी विवाह के योग्य हो गये थे। ज्येष्ठ पुत्र धृतराष्ट्र यद्यपि महाबली थे किन्तु नेत्र-हीन थे। भीष्म ने गान्धारराज के पास अपना दूत भेजा और धृतराष्ट्र के लिये कन्या की याचना की। प्रथम तो पिता ने इस सम्बन्ध को स्वीकार करने में आना कानी करनी आरम्भ की किन्तु मंत्रियों ने ऊंच नीच समझाकर राज्य के हित के लिये इसे आवश्यक बताया। गान्धारी ने राज्य के हित के लिये सहर्ष इसे स्वीकार कर लिया। और अपने पति की अन्धता की बात सुन कर स्वयं भी अपने नेत्रों पर पट्टी बांध ली।

कालक्रम से गान्धारी के सौ पुत्र हुए। इधर धृतराष्ट्र के लघुभ्राता

पाण्डु के भी पांच पुत्र थे। गान्धारी अपने पुत्रों के समान ही उनको भी चाहती थीं। पांडवों और कौरवों की शिक्षा दीक्षा के लिये आचार्य द्रोण को नियुक्त किया गया। बचपन से ही दुर्योधन पांडवों से वैर करता था। और उस कार्य में इसका मन्त्रित्व करता था शकुनी जो दुर्योधन का मामा था। शकुनी के लक्षण गान्धारी को अच्छे नहीं लगते थे। अपने पुत्रों को भी वह सदा पांडवों से मिल कर रहने की शिक्षा देती थी। किन्तु बहुत समझाने बुझाने पर भी कौरवों को बुद्धि नहीं आई। अन्त में गान्धारी की इच्छा के विपरीत पाण्डवों के साथ द्यूत हुआ। द्रौपदी का सभा में अपमान किया गया। पांडवों को १२ वर्ष का बनवास दिया गया। इतना होने पर भी दुर्योधन ने युद्ध के बिना सूई के अग्रभाग के बराबर भूमि देने से भी इन्कार कर दिया। पुत्र मोह में पड़े धृतराष्ट्र को गांधारी ने लाख समझाया कि वह दुर्योधन को अपने वश में रखें परन्तु धृतराष्ट्र कुछ न कर सका। उसने अपने पुत्र का ही समर्थन किया।

अन्त में सन्धि के सब प्रयत्न विफल हुए। युद्ध की तैयारियां प्रारम्भ हो गईं। कुरुक्षेत्र की भूमि में सेना निवेश बन गये। इस महा युद्ध में विजय प्राप्ति का आशीर्वाद मांगने को जब दुर्योधन माता गान्धारी के समक्ष गया तो न्यायपरायण गान्धारी के मुख से निकला—"जिधर धर्म होगा उसी की विजय होगी।" गान्धारी का आशीर्वाद सफल हुआ। अन्यायी कौरवों का नाश हुआ। स्वयं अपने पुत्र का भी विनष्ट होते देखना गान्धारी ने स्वीकार किया किन्तु अधर्म की विजय को नहीं।

युद्ध में कौरव कुल के नाश से संतप्त होकर क्षण भर के लिये गान्धारी क्रोधाभिभूत हो पांडवों को शाप देने का विचार करने लगी। इसी समय श्रीकृष्ण और व्यास ने उन्हें समझाया कि आपने धर्म की विजय का आशीर्वाद दिया था—अब उसे आप क्यों विफल करती हैं। गान्धारी शांत हो गई। और बोली—केशव मेरी बुद्धि पुत्र स्नेह के

कारण विचलित हो गई थी अब मेरी बुद्धि स्थिर है। मैं पांडवों का कल्याण करूंगी।

रणभूमि में कौरव कुल की पत्नियों का आर्तनाद सुनकर गान्धारी फिर एक बार विचलित हुई। इसी समय पांडव उनके समक्ष पहुंचे युधिष्ठिर ने विनीत भाव से अपना परिचय दिया। और शोक संतप्त हो वह उनके चरणों पर गिर पड़े। शेष पांडवों का उनके सामने जाने का साहस नहीं हुआ। गान्धारी ने कृष्ण को संबोधित करके कहा—कृष्ण! यदि तुम पूर्ण प्रयत्न करते तो इस संग्राम को रोक सकते थे किंतु तुमने उपेक्षा की। मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि यादव कुल भी इसी तरह भविष्य में पारस्परिक विग्रह से विनष्ट हो जायगा। उनकी पत्नियां भी इसी प्रकार रुदन करेंगी। तुम्हारी मृत्यु भी वन में अनाथ की भांति होगी। भगवान् ने कहा कि आप पतिव्रता हैं। आपका शाप अन्यथा न होगा।

युद्ध के उपरान्त पन्द्रह वर्ष तक धृतराष्ट्र और गान्धारी युधिष्ठिर के समीप रहे फिर वानप्रस्थ लेकर जंगल में तपस्या करने चले गये। कुन्ती भी उन्हीं के साथ चली गई॥

और अन्त में एक दिन वन में दावाग्नि से जलकर यह तीनों स्वर्ग को सिधार गये।

———

वीरांगना कर्मवती

प्राचीन काल की भांति मध्यकाल में भी आर्यनारियों ने वीरता का आदर्श उपस्थापित किया है। जौहर की ज्वाला में जल कर हीं नही रणभूमि में शत्रु के दांत खट्टे करके भी उन्होंने अपने धर्म और संमान की रक्षा की है। इन वीर राजपूत नारियों की कीर्ति कथाओं से मध्यकाल का इतिहास उज्ज्वल हो उठा है। इन वीर नारियों में कर्मवती का नाम स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है।

यह स्वनामधन्य महारानी चित्तौड़ाधिपति महाराणा संग्रामसिंह की छोटी पत्नी थी। (करमेती) कर्मवती बून्दी के राव भांडा के पुत्र नरबद की पुत्री थी। उसका विवाह महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) के साथ हुआ था। महाराणा सांगा विख्यात बाबर के साथ युद्ध में परास्त होकर मृत्यु को प्राप्त हुए। उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके पुत्रों में राज्य के लिये विग्रह खड़ा हो गया। रत्नसिंह और विक्रमादित्य में आपस में सदा तनातनी बनी रहती जिससे कर्मवती अत्यन्त क्षुब्ध रहती थीं।

कुछ कालोपरान्त आम्बेर की राजकुमारी से विवाह करने के लिये बून्दी के राजकुमार सूरजमल और रत्नसिंह में ठन गई। इस युद्ध में रत्नसिंह काम आये। विक्रमादित्य चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा किन्तु विक्रमादित्य अयोग्य और कायर था। इस कारण प्रजा उससे असन्तुष्ट रहती थी। इस अव्यवस्था और असंतोष से लाभ उठाकर

गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। मातृ भूमि और प्रजाजन पर आये इस आकस्मिक संकट के समय सदा की भांति चित्तौड़ के वीर शत्रु के प्रतिरोध के लिये एकत्रित हुए विक्रमादित्य से असंतुष्ट कुछ सैनिक बहादुरशाह से जाकर मिल गये। राजमाता को जब इस स्थिति का ज्ञान हुआ तो उन्होंने सरदारों और सैनिक को बुलाकर खूब फटकारा—शासन की बागडोर स्वयं राजमाता ने अपने हाथ में ली। वीर सैनिकों ने नग्न तलवार को छूकर प्रतिज्ञा की कि शत्रु को चित्तौड़ की पवित्र भूमि पर पग न रखने देंगे। शीघ्र ही नये सिरे से सैन्य का संगठन कर कर्मवती स्वयं सैन्य संचालन का कार्य करने लगीं। इतना ही नहीं वह स्वयं भी पुरुष वेश में घोड़े पर सवार हो शस्त्र ले शत्रु के रण क्षेत्र में उतरीं। सैनिकों ने यह सब देखा वह द्विगुणित उत्साह से युद्ध-भूमि में प्राणों का मोह तजकर जूझने लगे। उनके पराक्रम से बहादुरशाह की सेना के पांव उखड़ गये।

बहादुरशाह बड़ा धूर्त था। उसने अपनी सेना को पीछे हटा लिया और दुबारा अपनी सेना का संगठन किया और शीघ्र ही फिर चित्तौड़ पर आधमका। इस विशाल सैन्य को चित्तौड़ के मुट्ठी भर वीर कब तक रोकते। धीरे-धीरे उनकी संख्या कम होने लगी। जब जरा उनके पैर डगमगाते प्रतीत होते रानी कर्मवती उनको उत्साहित करतीं। अन्त में कुछ सरदारों ने सम्मति दी कि बहादुरशाह को स्वयं किले की कुंजी सौंप देनी चाहिए। और इस वृथा रक्तपात से बचना चाहिये। रानी यह सुन कर क्रोध से पागल हो उठी। उसने उन कायर सरदारों से कहा—राजपूतनी की कोख से जन्म लेकर तुम लोगों के मुख से ऐसे शब्द कैसे निकले? सिंह होकर गीदड़ों के समक्ष झुकने का प्रस्ताव तुम कैसे कर सके?

नीच म्लेच्छ विधर्मियों के समक्ष आत्म समर्पण करने को कहते तुम्हारी जिह्वा टुकड़े-टुकड़े क्यों न हो गई ?" महाराणी के ओजस्वी वचनों को सुनकर सरदारों के होश ठिकाने आ गये। सहसा महारानी को एक युक्ति सूझी। उन्होंने तत्काल दूत को बुलाने का आदेश दिया। दूत आया। उन्होंने दूत को लाल सूत का एक धागा और एक पत्रिका दी और उसे इसे सम्राट् हुमायूं के पास ले जाने की आज्ञा दी। पत्रिका में लिखा था—

"इस सूत के कच्चे धागों से एक राजपूत नारी आप से भ्रातृत्व का सम्बन्ध जोड़ती है- बहन बनकर संकट में रक्षा के लिये सहायता चाहती है।" इसके अतिरिक्त उस में बहादुरशाह की क्रूरता का वर्णन था। राजदूत इस पत्रिका को लेकर सम्राट् हुमायूं के पास चल दिया और कर्मवती फिर उत्साह से युद्ध में संलग्न हो गई।

हुमायूं ने इस पत्री तथा उस धागे को सादर स्वीकार किया। और तत्काल सैन्य लेकर बहिन कर्मवती की सहायतार्थ चल दिया। उन दिनों मुगलों और पठानों में संघर्ष हो रहा था। हुमायूं बंगाल में लड़ रहा था। उसने तत्काल युद्ध बंद करके चित्तौड़ की ओर सैन्य सहित प्रयाण कर दिया।

इधर चित्तौड़ में एक-एक दिन भारी हो रहा था। किले की सेना की संख्या दिनब-दिन घटती जाती थी। रानी कर्मवती हुमायूं के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। किन्तु वह समय पर न पहुँच सका। रानी अन्त समय तक वीरतापूर्वक युद्ध करती रही।

अन्तिम समय आया जान रानी ने बचे खुचे वीरों को

केसरिया बाना पहनने और राजदूत बालाओं को जौहर की अग्नि में जलने का आदेश दे दिया । तेरह सहस्र रमणियों ने अग्नि की ज्वाला का आलिंगन किया और वीर राजपूतों ने दुर्ग के द्वार खोल दिये । जब तक उनमें से एक के भी तन में प्राण रहा शत्रु सेना को गाजर मूली की तरह वह काटता रहा । अन्त में बहादुरशाह ने चित्तौड़ के ध्वस्त खण्डहरों में प्रवेश किया ।

जब यह महानाश हो चुका तब हुमायूं सेना सहित वहां पहुँचा । किन्तु तब तक बहन वीरगति प्राप्त कर चुकी थी। चित्तौड़ का सर्वनाश हो चुका था । चित्तौड़ की यह दशा देख कर हुमायूं का हृदय दहल उठा । क्रोध और प्रतिशोध की ज्वाला से उस का हृदय जल उठा । उसने बहादुरशाह को चित्तौड़ की वीरभूमि से निकाल दिया । इसप्रकार अपनी स्वर्गीय वीर बहन की मृत्यु का बदला लिया ।

हुमायूं इस अवसर पर न पहुंचने के लिये अन्त तक पश्चात्ताप करता रहा । भाई और बहिन का वह आदर्श भारतीय इतिहास की अमर घटना बन गया है ।

कर्मवती का वीरता पूर्ण बलिदान एक मुगल बादशाह को अपना भाई बनाने की बुद्धिमत्ता और सम्राट् हुमायूं का कर्त्तव्य पालन एक पवित्र वातावरण का स्मरण दिलाते हैं —जब कि मानवता अपने मतभेदों को विस्मृत करके प्रेमके पुण्य तीर्थ में अवगाहन करके पवित्र हुआ करती है ॥

तपस्विनी संघमित्रा

संघमित्रा भारत के महान् मौर्य सम्राट् देवानांप्रिय अशोक की पुत्री थी। युवावस्था में ही उसने राजसी ठाठ-बाठ, ऐश्वर्य विलास को लात मारकर बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था। उसके असाधारण त्याग की गाथा विश्व के धर्मेतिहास में जाज्वल्यमान अक्षरों में अङ्कित रहेगी।

महाराज अशोक युवावस्था में बड़े साहसी और युद्धप्रिय थे। कलिंग के लम्बे युद्ध में हत्याकाण्ड से उन्हें अरुचि हो गई। नरसंहारक युद्ध ने उनको युद्ध विरोधी बना दिया। पवित्रात्मा उपगुप्त के संसर्ग ने सोने में सुगंध का योग कर दिया। महाराज अशोक बौद्धधर्म में दीक्षित हो गये। और अपने राज्य में अहिंसा के उच्चतम आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिये शिलालेखों द्वारा उनकी आज्ञाएं जम्बू द्वीप भर में प्रसारित होने लगीं। दान पुण्य के साथ-साथ देश भर में चिकित्सालय प्रजा और पान्थशालाओं का जाल सा बिछा दिया गया।

धर्म में प्रजा की अभिरुचि बढ़ाने के लिये राज्य की ओर से अनेक विभाग खोले गये। भिक्षु नियुक्त किये गये। पत्थर की बड़ी-बड़ी शिलाओं पर धर्म की शिक्षायें खुदवाई गईं। मंदिरों, मठों, चौराहों और पहाड़ों में लगवा दी गईं। जो आज भी अशोक की धर्म विजय की साक्षी दे रही हैं। विदेशों में धर्म का प्रचार करने के लिये राज्य की ओर से भिक्षु भेजे जाते थे।

पिता की धर्म प्रियता का प्रभाव बालिका संघमित्रा और उसके भाई महेन्द्र पर भी पड़ा। अशोक ने उनकी शिक्षा दीक्षा अपनी देख-रेख में करवाई। दोनों भाई बहन, रूप में अनुपम, बुद्धि और धर्मनिष्ठा में अप्रतिम तथा विनय की साक्षात् प्रतिमा थे। राजकुमार महेन्द्र अशोक के ज्येष्ठ पुत्र थे अतः सिंहासन के उत्तराधिकारी वही थे। अशोक उन को राज्य-कार्य सौंप कर शेष जीवन धर्म सेवा में बिताने का विचार कर रहे थे कि एक दिन आचार्य सारिपुत्र मोद्‌गलायन उनके दरबार में आये और उन्होंने अशोक को परामर्श दिया कि तरुण महेन्द्र और तरुणी संघमित्रा को वह भिक्षु बना कर विदेश में बौद्ध धर्म प्रचार के लिये भेज दें। आचार्य की बात युक्तिसंगत होने पर भी अशोक के हृदय में पितृस्नेह जनित दुर्बलता के कारण द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ और आचार्य की बात को स्वीकार करने में वह दुविधा में फंस गये।

इसी समय महेन्द्र और संघमित्रा ने आचार्य के समीप आकर प्रणाम किया। पिता को दुविधा में पड़े देख कर दोनों भाई बहन ने आचार्य के चरणों में सिर झुकाकर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया आचार्य का हृदय आनन्द से गद्‌गद् हो उठा। इस विह्वल पिता ने दोनों को गले लगा लिया। उनकी आंखों में श्रद्धा प्रेम के आंसू छलक आये। सन्तति के इस महान् बलिदान ने उसकी आंखें खोल दीं। वह अपने को सौभाग्यशाली समझने लगा।

तरुण राजकुमार और तरुणी राजकुमारी के त्याग की गौरव-गाथा शीघ्र ही कानों कान देश भर में विस्तृत हो गई। सबने साधुवाद दिये। दर्शनों के लिये जनता उमड़ पड़ी। इधर महेन्द्र और संघमित्रा ने शीघ्र ही आचार्य से दीक्षा ली और भिक्षु वसन धारण करके धर्म प्रचार के लिये प्रस्थान की तैयारी की। अब राजकुमार का नाम धर्म-

पाल और राजकुमारी का नाम संघमित्रा रखा गया।

धर्म-विजय के लिये अभिमान—दोनों ने बौद्धशास्त्रों का गंभीर अध्ययन किया। ३२ वर्ष की आयु में धर्मपाल को सिंहलद्वीप भेज कर धर्म प्रचार करने की आज्ञा दी गई। नौका द्वारा समुन्द्र पार करके धर्मपाल सिंहलद्वीप में पहुँचे। उन दिनों वहां तिस्य नाम का राजा राज्य करता था। नवीन भिक्षु के धर्म प्रचार की कीर्ति उसके समीप पहुँची, वह इनके दर्शनों के लिये लालायित हो उठा। अन्त में उपदेश श्रवण कर राजा तिस्य ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। सहस्रों मनुष्यों ने धर्म दीक्षा ली।

आर्य अष्टांगिक मार्ग के उपदेशों से सिंहलराजकुमारी अतुलामी अत्यन्त प्रभावित हुई। और अपनी ५०० सखियों सहित भिक्षुणी का व्रत लेने का विचार उन्होंने प्रगट किया। इस प्रस्ताव को सुन कर धर्मपाल क्षण भर के लिए चिन्ता में पड़ गए किन्तु तत्काल ही उन्हें संघमित्रा का ध्यान आया और उन्होंने संघमित्रा के पास पत्र भेजा। धर्म प्रचार का पवित्र व्रत ले संघमित्रा भी सिंहलद्वीप जा पहुँची। संभवतः यह भारतवर्ष के इतिहास में पहली ही घटना थी कि एक महिला धर्म प्रचार के लिये विदेश यात्रा कर रही हो। मार्ग की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करती जब संघमित्रा सिंहलद्वीप पहुँची तब वहां की प्रजा ने इस तरुणी भिक्षुणी के दर्शन करके अपने को कृत-कृत्य समझा। राजा तथा जनता ने उसका भव्य स्वागत किया। उसके धर्मोपदेश को सुनकर नर-नारी अत्यन्त प्रभावित हुए। अपने भाई की सहायता से उसने वहां भिक्षुणी संघ की स्थापना की। राजकुमारी अतुला ने अपनी ५०० सखियों सहित दीक्षा लेकर भिक्षुणी संघ में प्रवेश किया।

इस प्रकार सिंहलद्वीप में बौद्ध धर्म का प्रकाश घर-घर पहुँचा

धर्मपाल और संघमित्रा ने धर्म-ज्योति जगाकर भारतवर्ष का यशोवि-स्तार किया। और सिंहल निवासियों के जीवन के उत्थान में जीवन भर सहयोग दिया।

संघमित्रा ने अपनी आयु का शेष भाग अपनी जन्मभूमि से दूर सिंहलद्वीप में ही व्यतीत किया वहीं उसकी मृत्यु हुई। वहां उसका एक समाधिगृह बना है। जो बौद्धों के लिए एक तीर्थ स्थान है।

भारत की महान् महिलाओं में तपस्विनी संघमित्रा का त्याग तपोमय जीवन, उच्चादर्शों के लिए वैभव विकास का बलिदान और अनवरत परिश्रम—सर्वदा जीवन, उत्साह और अनुपम—त्याग की भावना जागृत करता रहेगा।

—(०)—

राष्ट्र माता कस्तूरबा गान्धी

इतिहास में जब जब कर्त्तव्य परायणा सती साध्वियों की चर्चा होगी तब उनमें स्वर्गीया बा का नाम प्रमुख होगा। प्राचीन इतिहास में जिस प्रकार सती-सावित्री, पतिव्रता सीता, और अनसूया के मान आदर से स्मरण किये गये हैं, बा का स्थान भी उन्हीं के समक्ष है। बा भारत राष्ट्र की मा थी। उनके विचार उच्च थे और जीवन सरल। इसी कारण उन्हें राष्ट्र माता का गौरवमय पद प्राप्त हुआ। अपने जीवनकाल में ऐसा सम्मान सम्भवतः किसी भारतीय महिला को नहीं प्राप्त हुआ। वे धरती के टुकड़ों पर नहीं, राष्ट्र के जन-जन के हृदय पर शासन करती थीं। इनका प्रभाव महलों से लेकर दरिद्र कुटीर तक सब पर व्याप्त था।

जन्म, बाल्य, विवाह—कस्तूर बा का जन्म ई० सन् १८७० में गुजरात प्रान्त के पोर बन्दर नगर में हुआ था। इनके पिता गोकुलदास मनक एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। इनकी माता का नाम व्रज कुंवरी था। वे साक्षात् गृह-लक्ष्मी थीं। सरलता और कार्य-कुशलता का गुण कस्तूरबा को अपनी माता से ही मिला था। बा का बचपन बड़े लाड़-प्यार में व्यतीत हुआ। उन दिनों लोग कन्याओं को शिक्षा देना आवश्यक नहीं समझते थे, इतना ही नहीं जो लोग अपनी कन्याओं को पढ़ाते समाज उन्हें घृणा की दृष्टि से देखता था। बाल-विवाह की प्रथा का बोल-बाला था। बा के पिता गोकुलदास जी मनक और

गान्धी जी के पिता कर्मचन्द गान्धी में घनिष्ठ मित्रता थी। इस मित्रता को और अधिक घनिष्ठ और चिरस्थाई करने के लिये १३ वर्ष की आयु में ही बा का विवाह मोहनदास गान्धी से कर दिया गया। इस अल्पायु में घर-गृहस्थी का भार उठाना कुछ हंसी खेल न था किन्तु बा ने घर में आते ही सास के साथ गृह-कार्य में हाथ बंटाना प्रारम्भ कर दिया। तरुण गान्धी के विचार स्त्रियों के सम्बन्ध में विशेष उदार न थे। वे शंकाशील होने के कारण अपनी पत्नी को कड़े अनुशासन में रखना पसन्द करते थे। पत्नी उनकी बिना आज्ञा के कोई कार्य करे यह उनके पुरुष-हृदय को असह्य था, वे इसमें अपने पौरुष का अपमान समझते थे। उधर बा अशिक्षिता होने पर भी स्वाभिमानिनी थीं। वे अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखती थीं। देव-दर्शन और पूजन के लिये वे किसी की आज्ञा लेना अनावश्यक समझती थीं। इन बातों को लेकर पति-पत्नी संघर्ष, विवाद उठ खड़ा होता। गान्धी जी स्त्रियों का इस प्रकार मन्दिरों में जाना अनुचित समझते थे। परन्तु बा की स्वच्छ भावना को जितना दबाया जाता वह उतना ही ऊपर उठतीं। इन कारणों से कभी-कभी गृह-जीवन पर कलह के काले बादल मण्डराया करते थे। गान्धी जी को सनक थी कि वे अपनी पत्नी को आदर्श पत्नी कहलायें।

बा नितान्त निरक्षर होने पर भी अपने उच्च विचार और कुशल-व्यवहार से सब को चकित कर देती थीं। अपनी तीक्ष्ण प्रतिभा के फलस्वरूप गृहस्थी के काम-धंधों में लगे रहते भी उन्होंने साधारण हिन्दी तथा गुजराती भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। गान्धी को अपनी पत्नी का उच्च शिक्षित होना खटकता था किन्तु वे उसे शिक्षित करने में सफल न हो सके। प्राचीन प्रथानुसार वे दिन में

अपनी पत्नी का दर्शन भी न कर सकते थे। रात्री के अन्धकार में ही मिलन सम्भव था, फिर पर्दा की प्रथा भी इस में बाधक थी। गांधी जी ने अपने यौवन की इस मोहावस्था का वर्णन अपनी आत्म-कथा में किया है।

बा को १८ वर्ष की आयु में ही मां बनने का सौभाग्य मिला किन्तु शिशु ने शीघ्र ही वसुधा त्याग कर माता के हृदय को पुत्र वियोग से व्यथित कर दिया। गान्धी जी हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त कर चुके थे। अब विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करने का उनका विचार था। बा ने इस वियोग काल में अपनी योग्यता बढ़ाने का निश्चय कर लिया। गांधी जी यूरोप गये, बा ने घर पर रह कर अपने को शिक्षित करना प्रारम्भ किया, नियमित जीवन के अभ्यास से बा ने अपने को संयमी तथा सहन-शील बना लिया।

गान्धी जी बैरिस्टर बन कर भारत लौटे ही थे कि उन्होंने अफ्रीका को अपना कार्य क्षेत्र बनाने का निश्चय कर लिया और वहां की परिस्थिति का अध्ययन करने के लिये वे एक वर्ष के लिये अफ्रीका चले गये। अफ्रीका जाकर गांधी जी ने देखा कि ब्रिटिश शासकों का व्यवहार भारतीयों के साथ अत्यन्त अनादरपूर्ण और घृणायुक्त है, इस से उन के हृदय पर बहुत आघात लगा। अपनी-भारतीयों की दासता का पहला अनुभव गान्धी जी को यहीं हुआ। उसे दूर करने की उन्होंने मन ही मन प्रतिज्ञा की। और अफ्रीका में गांधी जी ने प्रवासी भारतीयों की समस्याओं को लेकर आंदोलन छेड़ दिया असहयोग आंदोलन और अहिंसा का प्रथम परीक्षण गान्धी जी ने अफ्रीका में ही किया। इस में उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़े मार खानी पड़ी, जेल जाना पड़ा, किन्तु गांधीजी इस तपस्या की आग में

तपकर कुन्दन हो कर निकले। इन्हीं प्रयोगों ने गांधी जी को भारत में असहयोग आंदोलन चलाने की प्रेरणा दी। गांधी जी को अफ्रीका में ३ वर्ष बिताने पड़े।

इस लम्बे काल में बच्चों सहित अकेली रहीं। स्वावलम्बी जीवन बिताने के कारण अब वह बहुत निपुण और बुद्धिमता हो गई थीं। उनका जीवन देखने में साधारण स्त्रियों जैसा ही प्रतीत होता था किन्तु जैसे-जैसे गान्धी जी में परिवर्तन हो रहा था उसके साथ-ही-साथ बा का जीवन भी बराबर ऊंचा उठता चला जा रहा था। उनकी उदारता, त्याग और यश की सुरभि अबदिग्-दिगान्त में विकीर्ण होने लगी थी।

कस्तूरबा महान गान्धी जी के मार्ग की बाधक नहीं बनी। कर्तव्य परायण पति पर उन का अटूट विश्वास था। गान्धी जी जिस सांचे में-आदर्श में बा को ढालना चाहते थे बा उसी में ढलती जा रही थीं। अनेकों कष्ट उठाकर भी पति के पदचिह्नों पर चलना ही उनके जीवन का आदर्श था।

भारत में कुछ काल निवास करके गान्धी जी फिर सपरिवार अफ्रीका जाने को उद्यत हुए। बा के लिये पारसी फैशन की साड़ियां खरीदी गईं और बच्चों के लिये इंगलिश ढंग के सूट। बा को साधारण वेश में अफ्रीका लेजाना स्वयं गान्धी जी को ही पसन्द न था। बा को यह प्रदर्शन अनुचित लगा पर पति की इच्छा का विरोध वे न कर सकीं। अफ्रीका जा कर उनके गृहस्थ जीवन के कुछ वर्ष अच्छे कटे। वहीं इन के दो पुत्र हुए। गान्धीजी का जीवन एक प्रयोग क्षेत्र था वे सत्य और अहिंसा के साधक थे अपने आदर्श में उनकी निष्ठा अविचल थी अपनी पत्नी को भी वे अपने आदर्शों के अनुरूप ही ढालना चाहते

थे। वा धैर्यपूर्वक दृढ़ता से उन का अनुगमन कर रही थीं। गान्धी जी ने विलासपूर्णजीवन का परित्याग कर दिया। पत्नी के रहते हुए वीरव्रत की साधना प्रारंभ की—बा ने उनको सहयोग दिया। गान्धी जी के ब्रह्मचर्यव्रत की पूर्णता में बा को दृढ़ता और धैर्य का ही विशेष हाथ है। गान्धी जी की महानता बा की कठोर साधना का ही प्रतिबिम्ब है। बा ने ही गान्धी जी को साधारण वकील से एक महात्मा के उच्चासन पर आसीन कर दिया। अपने पति की आदर्श-साधना में दीक्षित हो अस्तूबा स्वयं आदर्श साधिका बन गईं। वैभव-विलास को तिलांजलि दे दी गई। नौकर चाकर हटा दिये गये घर गृहस्थी के सब काम बा अपने हाथ से करतीं। कपड़े धोना, बर्तन मांजना, घर की सफाई यहां तक कि मल-मूत्र भी अपने ही हाथ से साफ करतीं। गृहस्थ में रहते हुए भी उनका जीवन वानप्रस्थियों का-सा था।

दम्पति की यह कृच्छ्र साधना दीन हीन भारतवासियों को उच्च आदर्श की प्रेरणा देने के लिये ही थी। अभ्यागत की सेवा का भार अब बा के ऊपर रहता। गांधी जी अपना सब काम अपने हाथों करते। इन दिनों कभी-कभी बा को अतीत जीवन की सुखदस्मृतियां आतीं तो सहसा उनका हृदय बोझिल हो उठता। गांधी जी दृढ़ता से इनको दबा देते। बलपूर्वक अपनी दुर्बलताओं, अशक्तियों को दबा देना, उभरने न देना ही तो योग है।

एक बार एक ईसाई लिपिक (क्लर्क) जो पंचम (अछूत) जाति का था गांधी जी के घर ठहरा। उसके मूत्र-पात्र को उठाकर फेंकने के सम्बन्ध में पति-पत्नी में वाक्कलह छिड़ गया। प्राचीन संस्कारों के मोह में ग्रस्त बा बड़ी दुविधा में पड़ गईं। अस्पृश्य होने के कारण उस पात्र को उठाने में उनका मन घृणा से भर उठता उधर पति देव को

उठाते देखकर लज्जा से जड़ हो जाता। उसके झूठे बर्तन तो किसी प्रकार बा ने साफ़ कर दिये किंतु पेशाब का पात्र उठाना असह्य था। बा के विरोध को देखकर गांधी जी स्वयं इस कार्य को करने के लिये उद्यत हुए किन्तु पति प्राणा बा को यह सहन न हो सका। अन्त में आंखों में आंसू भर कर बा आगे बढ़ीं और पात्र उठा लिया। गांधी जी ने जब यह देखा तो क्रुद्ध होकर बोले, 'यह सब बखेड़ा मुझ से नहीं देखा जाता।' और कलाई पकड़कर बा को घर के दरवाजे से बाहर निकाल दिया। बा को यह आशा न थी उन्होंने रोते-रोते कहा "आपको तो शर्म नहीं किन्तु मुझे तो है। यहां तो मेरे माता-पिता भी नहीं जिन के पास शरण लूं। अबला जान कर ही तो विदेश में आप यह अत्याचार कर रहे हैं। किवाड़ बन्द करो, किसी ने देख लिया तो आप का ही अपमान होगा।" बा की बात युक्तियुक्त थी। गांधी जी अपने कृत्य पर मन ही मन लज्जित हुए। लेकिन बा को जब इस सेवा का सच्चा अर्थ समझा दिया गया तो उस दिन से वह मृत्यु पर्यन्त अछूत जाति की सेवा तथा उन्नति के कार्य में प्राणप्रण से लगी रहीं।

परीक्षा की कसौटी पर--गांधीजी कस्तूर बा को कठिन आदर्श वाद के पथ पर चलाना चाहते थे। बा सच्चे अर्थों में उनकी सहचरी थीं। उन्होंने हंसते-हंसते उस पथ का अनुसरण किया। एक बार गांधी जी ने बा को उदारता और त्याग परता की कड़ी परीक्षा ली। बा उसमें पूर्णतया उत्तीर्ण हुईं। घटना इस प्रकार है—सन् १९०० में गांधी जी जब दुबारा भारत आ रहे थे तो जनता ने उनकी सेवाओं से प्रभावित होकर स्वर्ण-आभूषण भेंट किये जिसमें स्वर्ण मुद्राएं (अशर्फियां) भी थीं। प्रथम तो गांधी जी के मन में भी इस स्वर्ण राशि को देखकर पर्याप्त द्वन्द्व रहा। अन्त में उन्होंने इस धन को सेवा-

कार्य में समर्पित करने का संकल्प कर लिया, किन्तु इसके लिये बा की अनुमति लेना भी आवश्यक था। गांधी जी ने बा से संमति ली तो पहले तो स्त्री स्वाभावानुसार उनके मन में लालसा का प्रबल उभार उठा और वे बोलीं कि इस धनराशि से हमारे बच्चों का भविष्य उज्ज्वल होगा, इस स्वर्ण को हमारी पुत्रवधुएं पहनेंगी। तब गांधी जी ने अपना शुभ संकल्प बा के संमुख प्रकट किया। बा इस संकल्प को सुन कर प्रफुल्लत हो उठीं और तत्काल ही उन्होंने इस स्वर्ण राशि को सेवा कार्य में लगाने की अनुमति दे दी। बा की इस अनुपम उदारता और त्याग से गांधी जी को असीम आनन्द हुआ। बा ने उच्चतम आदर्शों को न केवल हृदयंगम कर लिया अपितु वह इस पथ पर दृढ़ता से चल रही थीं।

जिस प्रकार स्वर्ण आंच पर तप कर कुन्दन बन जाता है वैसे ही तपस्या की अग्नि में तपकर बा का जीवन दीप्त हो उठा। सहन शीलता की वे साक्षात प्रतिमा थीं। अनेक असाध्य रोगों को मुस्कराते हुए उन्होंने सहा यहां तक कि आपरेशन के समय भी उन्होंने आह तक भी न की। एक बार अत्यन्त रुग्ण अवस्था में उन्हें चिकित्सालय में रहना पड़ा। दुर्बलता दिन प्रति दिन बढ़ती जाती थी। गांधी उन्हें छोड़ कर जो ट्रान्सवाल में सत्याग्रह-आंदोलन चलाने के लिये गये हुए थे। बा अर्ध मूर्छित अवस्था में खाट पर पड़ी रहतीं डाक्टर औषध रूप में उन्हें मांस का शोरबा देना चाहता था, उसके विचार से उनके बचने का केवल यही उपाय था। गांधीजी से जब डाक्टर ने अनुमति मांगी तो उन्होंने इसको पूर्णतया बा की इच्छा पर छोड़ दिया। डाक्टर इस बात से क्रुद्ध हुआ। उसने गांधीजी को बुलाकर कहा कि यदि बा को मेरे निरीक्षण में रखना है तो मेरे बताये पथ्य को लेना ही पड़ेगा

अन्यथा मैं ऐसे रोगी की चिकित्सा करने में विवश हूं। इस उत्तर को सुनकर गांधी जी ने बा को सब बात समझाने का प्रयत्न किया। इस समय बा के जीवन का पल-पल संकट में व्यतीत हो रहा था। बड़ी कठिनता से उनके कानों के समीप मुंह लगा कर यह बात उन्हें समझानी पड़ी। बा ने दृढ़ता से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि मैं कदापि अपवित्र खाद्य से अपना तन अपवित्र न करूंगी। भले ही आप की गोद में मेरी मृत्यु हो जाय, मैं इसे अपना सौभाग्य समझूंगी। । कृपया मुझे यहां से ले चलिये यहां मेरा धर्म भ्रष्ट किया जा रहा है। डाक्टर तो एक प्रकार से कह ही चुका था और बा का मन अब वहां किसी भी प्रकार रहने को उद्यत न था। अब तो गांधी जी बड़े असमंजस में पड़ गये—अवस्था ऐसी थी कि भय था कहीं रिक्शा में ले जाते समय कोई दुखदायी घटना न हो जाय। अन्त में गांधीजी इस अस्थि पंजर को रिक्शा में डाल कर स्टेशन की ओर चल दिये। चिकित्सालय के अधिकारी आश्चर्य से मुंह ताक रहे थे। बड़ी दुःख और निराशा भरी दृष्टि से अपनी ओर सबको देखते देखकर बा ने कहा, 'घबराओ नहीं, मेरा हृदय शान्त है, मुझे कुछ नहीं होगा।" उनकी वाणी में ओज था और आंखों में चमक। उन्हें अपने धर्म की रक्षा करनी थी। उनकी दृढ़ इच्छा शक्ति को देखकर गांधी जी भी स्तम्भित हो गये। उस दिन के बाद रोग सचमुच ही घटने लगा और बा शीघ्र ही स्वस्थ हो गईं। गांधी जी बा के इन्हीं गुणों पर मुग्ध थे।

अफ्रीका से लौटकर गांधीजी ने भारत में स्वतन्त्रता की ज्योति जगाई। घर घर और बच्चे-बच्चे के हृदय में अपने ओजस्वी कार्यों द्वारा स्वतन्त्रता का स्वर भर दिया। कस्तूर बा ने इस क्षेत्र में भी पति का अनुकरण किया। वह पति के कन्धे से कन्धा मिलाकर देश-

जाति की सेवा में लीन हो गईं। वीरांगनाओं की भांति बाधाओं-विपत्तियों पर विजय प्राप्त करती हुई मिथ्या यश और नेतृत्व की लालसा से निर्लिप्त रहकर सच्ची सेवा का आनन्द उठाने लगीं।

राजनीति में—घरजीवन की भांति कस्तूरबा का राजनीतिक जीवन भी संघर्षमय था। सर्व प्रथम अफ्रीका में इन्होंने सत्याग्रह में भाग लिया। जिसके लिए इन्हें जेल-यात्रा करनी पड़ी। उन दिनों वे अफ्रीका (फिनिक्स) के एक आश्रम का संचालन कर रही थीं। गांधी जी ने सत्याग्रह की अपील की थी। इस पर ताना देते हुए बा ने कहा था—"आप मुझे सत्याग्रह में जाने के लिये क्यों कहते। आप सोचते हैं कि मैं जेल से डर कर क्षमा मांग लूंगी। यदि ऐसा ही हुआ तो मुझ से सदा के लिये सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना।" बा के आत्म-विश्वास पूर्ण बचन सुन कर गांधी जी विस्मित भी हुए और हर्षित भी। अफ्रीका में जेल के बाहर ही सत्याग्रहियों के साथ अमानुषिकता का व्यवहार हो रहा था, जेल के भीतर तो कहना ही क्या। वे प्रसन्न मन से जेल गईं, जेल से मुक्त होने के बाद उनका शरीर अस्थि-मात्रावशेष रह गया था—जेल यातना के स्पष्ट चिह्न उस पर अङ्कित थे, फिर भी उनके मुख पर दैवी दीप्ति थी।

सन् १९१६-१७ में भारत में गांधी जी ने निलहे गोरों के अत्याचारों के विरोध में चम्पारन (बिहार) के किसानों को जागृत करने का कार्य प्रारम्भ किया। बा भी तत्परतापूर्वक वहीं काम करने लगीं। वहां किसान बच्चों के लिये एक स्कूल खोला गया और बा उसकी मुख्य संचालिका थीं। गान्धी जी के साथ झाड़ू लेकर गांव की गलियां साफ करते हुए उन्हें खाने-पीने तक की सुधि न रहती। गांव के सभी बच्चों को स्कूल में एकत्र करके खादी तथा स्वच्छता के बारे में

समझातीं। एक दिन स्कूल के छप्पर में आग लग गई। कस्तूरबा ने रात-दिन बराबर करके गांवों का दौरा किया और धन संग्रह करके स्कूल के लिये एक विशाल भवन बनवा दिया।

आंदोलन की अग्नि में—असहयोग आंदोलन के दिनों में कस्तूरबा जेल जाने वालों की पहली पन्ति में दीखतीं। सत्याग्रह की सफलता के लिये देशवासियों से मार्मिक अपीलें करती, बा की अपील सुनकर हजारों युवक सत्याग्रही बन कर जेल यात्रा के लिये उद्यत हुए। बा का नाम और यश आंदोलन के साथ २ भारत भर में फेल गया कांग्रेस कर्मियों पर आपका असाधारण मातृ-स्नेह था। साबरमती और सेवा ग्राम के लिये तो वह साक्षात् देवी ही थी। आश्रम का प्रबन्ध बड़ी योग्यता से सम्भालतीं। साथ साथ स्वाधीनता-आंदोलनों में भी आगे बढ़कर भाग लेतीं। बारदोली सत्याग्रह में जब गांधी जी गिरफ्तार हो गये तब बा ने अपने वीरोचित साहस का परिचय दिया। उनको देख कर किसानों के उत्साह का पार न रहा। गुजरात के किसानों के लिये तो वह साक्षात् जगदम्बा ही थीं। सन् १९२३-४३ तक बा का जीवन सेवाग्राम के तपोवन में बहते हुए सोता जैसा था। वे झूठी कीर्ति और प्रशंसा से सदा दूर रहकर ही काम करना पसंद करतीं। १९२२ में कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्ष बनने का अनुरोध करने पर बा ने कहा—"मैंने सेवा के लिये पृथ्वी पर जन्म लिया है सभानेत्री बनने के लिये नहीं। मैं जहां हूँ वहीं ठीक हूँ।"

सन् १९३०-३२ के आंदोलन में वे अन्य सत्याग्रहियों के सदृश सत्याग्रह करके जेल गईं। नमक कर के विरुद्ध आंदोलन में एक बड़े समूह के साथ आपने नमक भी बनाया और फल-स्वरूप ६ मास कठोर कारावास का दंड भी भोगना पड़ा। १९४० के व्यक्ति-

गीत सत्याग्रह में जब गांधी जी जेल गये बा भी जेल पहुँचीं। गांधी जी के बिना एक क्षण भी बाहर रहना बा को अच्छा नहीं लगता था। जब बाहर रहती तो उनके निर्दिष्ट काम के पूरा करने में लगी रहतीं।

सन् १९४२ में जब गांधी जी सेवाग्राम से बम्बई जाने लगे तो बा ने भी जाने के लिये हठ पकड़ा। उसका हृदय जानता था कि यह अंतिम संघर्ष है। गांधी जी और दूसरे नेता ९ अगस्त से पूर्व ही पकड़कर जेल भेज दिये गये। बा भी जेल के सींकचों में बन्द कर दी गईं। उनका स्वास्थ्य दिन प्रति दिन क्षीण होता जा रहा था। उधर गांधी जी आमरण अनशन व्रत कर रहे थे। जिसके कारण बा का हृद्‌रोग बढ़ गया। इसके साथ ही अकस्मात् निमोनिया भी हो गया। और १२ फरवरी १९४४ शिवरात्रि को रात्रि के समय गांधी जी की गोद में यह महात्मा सदा के लिए सो गई।

राष्ट्रमाता बा की मृत्यु का समाचार बिजली की भांति देश में फैल गया। देश शोक-सागर में डूब गया। वह सच्चे अर्थों में पराधीन राष्ट्र की माता थीं उन्होंने स्वातन्त्र्य आंदोलन के संघर्ष में अपने प्राण दिये थे।

आज कस्तूरबा नामक संस्था देश के कोने कोने में शिक्षाप्रसार, निर्धनों की चिकित्सा करने का काम कर रही है। भारतीय इतिहास में बा का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

स्वर्गीया श्री कमला नेहरू

भारत देश की नारियां अपने पातिव्रत्य, और मूक बलिदान के लिये सदा से प्रसिद्ध हैं। किन्तु वे भारत में ऐसे भी नारी रत्न समय-समय पर होते रहे हैं, जिन्होंने उपर्युक्त गुणों के साथ-साथ पुरुषों के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर समर भूमि में, राजनीतिक संघर्षों में, आगे बढ़ कर भाग लिया है। इस प्रकार पराधीन राष्ट्र का मुख उज्ज्वल किया है। कमला नेहरू इसी प्रकार की असाधारण महिला थी। भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन के इतिहास में उनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

जन्म, शैशव, शिक्षा—आपके माता-पिता देहली में निवास करते थे। वे काश्मीरी ब्राह्मण थे। उनका नाम जवाहरलाल कौल था। वे देहली के प्रसिद्ध व्यापारी थे। सन् १९०० में इन्हीं के यहां एक कन्या रत्न ने जन्म लिया। कमल के समान कोमल और सुन्दर होने से माता-पिता ने उसका नाम कमला रखा। कौल परिवार पर लक्ष्मी की अपार कृपा थी। इसलिये बालिका कमला का लालन-पालन राजकीय ठाठ-बाट से हुआ।

यद्यपि उन दिनों उच्च घरानों में अरबी फ़ारसी का बोल-बाला था, तथापि लड़कियों की शिक्षा देवनागरी में ही होती थी। कमला की भी शिक्षा देवनागरी में ही प्रारम्भ की गई। कमला की बुद्धि तीक्ष्ण थी। शीघ्र ही विषय का ग्रहण कर लेती थी। अपने घर की शिक्षा

समाप्त करके आगे पढ़ने के लिये इन्हें प्रयाग भेज दिया गया। वहां अंग्रेजी का ज्ञान भी इन्होंने प्राप्त किया।

विवाह और गृहस्थ जीवन—कमला अब युवती हो गई थी। माता-पिता विवाह की चिन्ता कर रहे थे। इन्हीं दिनों पं० मोतीलाल नेहरु के सुपुत्र पं० जवाहरलाल नेहरू इङ्गलेण्ड से बैरिस्टरी पास करके लौटे थे। सौभाग्यतः कौल जी की दृष्टि जवाहरलाल पर पड़ी और इन्होंने अपनी पुत्री कमला के लिये उन्हें ही सुयोग्य वर समझा। माता स्वरूप रानी भी कमला के गुणों पर रीझ गईं थीं। जवाहरलाल आधुनिक विचारों के युवक थे, उन्होंने मंसूरी में कमला से परिचय प्राप्त किया और प्रथम परिचय में ही कमला के हृदय पर अधिकार कर लिया। इस समय कमला जी की आयु १६ वर्ष की थी।

सन् १९१६ वसन्त पंचमी के दिन पं० जवाहरलाल नेहरू और कमला देवी परिणय-पाश में बन्ध गये। विवाह बड़े राजसी ठाट-बाट से हुआ। दोनों ही परिवार समृद्ध परिवार थे। देश के नेता निमन्त्रित किये गये। विवाह कार्य बड़े सज-धज के साथ सम्पन्न हुआ।

कमला नेहरु शीघ्र ही अपनी सरलता, सौन्दर्य और सद्व्यवहार से पति-कुल की सम्राज्ञी बन गई। कमला जी को जवाहरलाल जी हृदय से चाहते थे। उसके बिना एक क्षण भी उनको अच्छा न लगता और इसी प्रकार कमला जी अपने पति की प्रत्येक आज्ञा का पालन करती थीं। सन् १९१७ में उनके गृह में एक कन्या ने जन्म लिया। माता-पिता ने इस कन्या का नाम इन्दिरा रखा। इसके पश्चात् एक पुत्र भी हुआ किन्तु वह माता-पिता तथा पितामह, पितामही को शोक-

सागर में निमग्न कर शीघ्र पृथ्वी को छोड़ गया ।

कुछ काल तक सुख समृद्धिमय जीवन का यह क्रम चलता रहा। किन्तु शीघ्र ही देश में तूफानी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ । तरुण जवाहरलाल भला घर में कैसे बैठे रहते । अपने देश की पराधीनता का अनुभव तो वह विदेश में रह कर कर ही चुके थे । बस चिनगारी लगने की देर थी । वह संघर्ष क्षेत्र में आ गये । उनकी पाश्चात्य वेष-भूषा और भाषा देश भक्ति की प्रबल भावना के प्रवाह में बह गई। सुख-सम्पदा को लात मार कर वीर जवाहर स्वाधीनता के संग्राम में कूद पड़ा । एक मात्र पुत्र जवाहर के इस पथ पर पग रखते ही पंडित मोतीलाल नेहरू भी स्वाधीनता-आन्दोलन के पथिक बन गये ।

विलासपूर्ण जीवन के स्थान पर अब तपोमय जीवन का प्रारम्भ हुआ। आवश्यकतायें कम की जाने लगीं । सरलता और सादगी अब उनके जीवन के आदर्श थे। कमला ने भी पति का अनुसरण करके अपने जीवन को सादा बना लिया । अब वह घर के काम अपने हाथों से करने लगीं ।

प्रथम महायुद्ध के बाद अंग्रेजों ने घोर पाशविक दमन करके भारत को स्वाधीनता देने की अपनी प्रतिज्ञा पूरी न की। सन् १९१९ में प्रसिद्ध जलियांवाला काण्ड हुआ । पूरे देश में आतंक छा गया। उस समय अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ । पं० मोतीलाल नेहरू उसके प्रधान बनाये गये । उन दिनों हजारों वीर युवकों के प्राण संकट में थे, हजारों जेल यातनायें भोग रहे थे । पं० मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने उनकी रक्षा करने का कार्य किया। पार्लीमेण्ट में तारें दी गईं । उनके मुकद्दमे लड़े गये ।

सन् १९२०-२१ में रोलट कानून के विरुद्ध गान्धी जी का असहयोग आंदोलन चला, खादी का प्रचार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आंदोलन छिड़ गया। जन साधारण के जोश का पारावार न था। क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी एक साथ विदेशी सरकार के विरुद्ध मोर्चा लेने के लिये उठ खड़े हुए थे। पं० जवाहर लाल नेहरू अब देश में तूफानी प्रचार कर रहे थे। पं० नेहरु को ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। बस फिर क्या था कमला जी उनका कार्य पूरा करने के लिये तत्काल कार्य चेत्र में उतर पड़ीं। पुरुष वेश धारण करके उन्होंने विदेशी कपड़े की दुकानों पर धरना देना प्रारम्भ किया। सरकारी स्कूलों और कालेजों के आगे भी धरना दिया जाने लगा। विदेशी कपड़ों की होली जलाई जाने लगी। कमला जी ने सब से पहले अपनी कीमती विदेशी साड़ियां आग के हवाले कीं, आंदोलन चलाने के लिये सहस्रों रुपये एकत्रित किये गये। फलस्वरूप सहस्रों महिलायें आंदोलन में भाग लेने लगीं। जेलें भर गईं। अन्त में सरकार समझौते को विवश हुई, बन्दी मुक्त हुए। नेहरू जी भी दूसरे नेताओं सहित बाहर आये। कमला जी के कार्यों का विवरण सुन कर पं० नेहरू का हृदय उत्साह से द्विगुणित हो गया।

रोग शय्या पर—आन्दोलन में निरन्तर कार्य करने से कमला जी का कोमल शरीर क्षीण होता गया। डाक्टरों ने बताया कि उन पर क्षय रोग का आक्रमण हुआ है। भारत के प्रसिद्ध डाक्टरों की चिकित्सा कराई गई किन्तु कोई लाभ न हुआ। अन्त में इन्दिरा तथा ननद के सहित उनको स्विटजरलैण्ड भेज दिया गया। वहां स्वास्थ्य गृह में रह कर वह चिकित्सा कराने लगीं। धीरे-धीरे चिकित्सा

और जल-वायु के प्रभाव से उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा । कुछ दिनों के बाद नेहरू जी विदेश यात्रा को गये । वापिस लौटते हुए कमला जी ने भी उनके साथ भ्रमण करके यूरोपीय देशों की परिस्थिति का अध्ययन किया। यह लोग जहां जाते इनका स्वागत होता, लोग इनके विचारों को सुनते। स्वस्थ होकर यह भारत लौट आईं ।

शंघर्ष में—भारत में आकर देश भक्ति की भावना को दबाना तो असंभव ही था। आते ही उन्होंने कांग्रेस का कार्य संभाल लिया। शरीर तो उनका पहले ही जर्जर प्रायः था। कार्याधिकता से स्वास्थ्य फिर तेजी से गिरने लगा। १९२९ में कांग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन रावी के किनारे लाहौर में होना निश्चित हुआ। उस में राष्ट्रपति पद पर पं० जवाहरलाल नेहरू आसीन होने जा रहे थे। नेहरूजी के स्वागत में भव्य प्रदर्शन का आयोजन किया गया। श्वेत हत्या रूढ़ नेहरू प्रदर्शन के मध्य चल रहे थे। लाखों नर नारी चिरतृसित नेत्रों से अपने हृदय सम्राट का दर्शन कर रहे थे। उन पर पुष्प वर्षा करके स्वागत कर रहे थे। कमला नेहरू माता स्वरूप रानी तथा पं० मोतीलाल नेहरू अनारकली के एक भव्य भवन पर खड़े यह दृश्य देखकर गद्‌गद् हो रहे थे। कमलारानी के तो हर्ष और गौरव की सीमा ही न थी। माता ने उनके भाल पर तिलक किया। मोतीलाल ने मुद्रायें निछावर कीं इसी ऐतिहासिक अधिवेशन में राष्ट्रीय महासभा ने पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव स्वीकृत किया। इसके पश्चात् ही महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में कर विरोधी आन्दोलन छिड़ गया।

गान्धी जी के अभियान के साथ ही पूरे देश में आंदोलन की लहर उठ खड़ी हुई। स्थान-स्थान पर नमक कानून तोड़ा जाने लगा। आनन्द भवन भी क्यों पीछे रहता। आनन्द भवन के निवासियों ने

भी नमक बनाना प्रारम्भ किया। पं० नेहरू को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया। पं० मोतीलाल जी भी विदेशी का बहिस्कार करते हुए कृष्ण मन्दिर पहुँच गये। कांग्रेस को उस समय कार्यकर्ताओं की आवश्यकता थी। कमला ऐसे समय में शान्त बैठने वाली नहीं थी। उसने स्त्रियों के एक दल को साथ लेकर गांव गांव और मुहल्ले मुहल्ले में नमक बनाने का प्रचार आरम्भ कर दिया। विदेशी माल के बहिष्कार का आंदोलन भी उग्र होता गया। ग्रीष्म की तप्त-दुपहरी में सुकुमार कमला इधर से उधर प्रचार आंदोलन करती घूमती स्वास्थ्य की चिन्ता रत्ती भर भी न करतीं। वहां स्वयं सेविका बन गईं। इनके कार्य से प्रभावित होकर विदेशी कपड़े के व्यापारियों ने विदेशी कपड़ा बेचना लगभग बन्द कर दिया। स्वभाव की सरलता के कारण ग्रामीण औरतों पर भी उनका प्रभाव अच्छा पड़ता। उच्च वर्ग की स्त्रियों ने भी उनकी देखा-देखी विदेशी कपड़ा जलाकर खादी पहनना प्रारम्भ कर दिया।

इस बार तो एक के बाद एक नया आंदोलन खड़ा हो रहा था। सरकार व्यग्र थी। नमक कर विरोधी आंदोलन फिर विदेशी माल के बहिष्कार का आंदोलन और अब भूमिकर विरोधी आंदोलन भी उठ खड़ा हुआ। कमला ने किसान जनता का नेतृत्व किया। सरकार यह सब कब सहने वाली थी कमला जी को पकड़ कर जेल के सींखचों में बन्द कर दिया गया। उन्हें लखनऊ जेल में रखा गया। इधर पं०मोतीलाल जी का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया जिसके कारण कमला जी को शीघ्र मुक्त कर दिया गया।

जेल से आते ही कमला पं० मोतीलाल जी की सेवा सुश्रूषा में लग गईं। किन्तु उनका रोग बढ़ता ही गया और अन्त में

आनन्द भवन में ही पं० मोतीलाल नेहरू का स्वर्गवास हो गया। समस्त देश शोक सागर में डूब गया। इससे कमलाजी को भी गहरा धक्का लगा वे फिर रोगी रहने लगीं। पं० जवाहरलाल नेहरू भी मुक्त किये गये उन्हें गोलमेज कान्फ्रेन्स में भेजा गया। वहां से वापस आते ही वह फिर गिरफ्तार कर लिये गये। कांग्रेस को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। ऐसे समय में मजबूत कार्य-कर्ताओं की आवश्यकता थी। कमलाजी ने कांग्रेस की प्राथमिक कमेटियों में जाकर कार्य-कर्ताओं को उत्साहित करना प्रारम्भ किया। गुप्त संगठन के कार्य को करने से उनकी शक्ति फिर क्षीण हो गई। रोग बढ़ने पर दो चार दिन उन्हें खाट पकड़नी पड़ती किन्तु थोड़ा आराम होते ही फिर काम करने लगतीं। इन्हीं दिनों यह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सदस्य बनीं।

बिहार के भूकम्प में आपने क्षति पीड़ितों के लिये घूम-घूम कर अन्न, वस्त्र और धन का संग्रह किया। इस प्रकार प्रत्येक कार्य में आपने आगे बढ़कर मान लिया।

रोग और मृत्यु—कमलाजी का दुर्बल शरीर कब तक इस भार को सहता अन्ततः वह बहुत अधिक क्षीण हो गईं। इधर पं०जी को देश-सेवा के कारण जेल में रहना पड़रहा था। उनकी हालत दिन-प्रतिदिन खराब होती गई। अन्त में ११ दिन के पैरोल पर नेहरूजी को छोड़ा गया, जिससे वे अपनी मृतप्राय पत्नी के दर्शन कर सकें। नेहरुजी ने आकर जो कुछ देखा वह कांप उठे। १८-१६ वर्ष का वैवाहिक जीवन उनके नेत्रों के समक्ष घूम गया। इस बारे में नेहरुजी अपनी कहानी में लिखते है—"पिछले १८-१६ वर्ष में हम कितने दिन साथ-साथ रहे होंगे। अक्सर मैं रहा जेलों में, वे रहीं देश सेवा अथवा स्वास्थ गृहों में। लम्बे काल के बाद कारागार के सींकचेदार फाटकों में से

हमारा क्षणिक मिलन हो जाता था। कमला की दीपकबाती बुझ रही है। मेरे आजाने से कमला की अवस्था में कुछ सुधार हुआ। पर ११वें दिन मुझे फिर नैनी जेल में ले जाया गया। विदाई के समय कमला ने धीमी आवाज से मेरे कान में कहा—"मेरी खातिर गवर्नमेण्ट को किसी प्रकार का वचन न लिख देना।" स्वतन्त्रता की देवी ने अपनी मृत्यु की भी परवाह न करते हुए कितनी उच्च भावनाओं का प्रदर्शन किया। कमला जैसी वीरांगना से ऐसी ही आशा की जा सकती थी। इससे मुझे असीम सुख और बल मिला।"

यदि इस समय नेहरू जी मुक्त कर दिये जाते तो संभव था कि कमला को इतना शीघ्र मृत्यु का ग्रास न बनना पड़ता। भारतीय स्वास्थ्य गृहों में कोई लाभ न होने पर उन्हें जर्मन स्वास्थ्य गृह में ले जाया गया। किन्तु कमला का स्वास्थ्य वहां भी ठीक न हुआ। चिन्ताजनक दशा को देखकर डाक्टर भी निराश होने लगे पं० नेहरू को तार द्वारा जेल में सूचित किया गया। नेहरू जी के हृदय पर कमला के समाचार ने बड़ा आघात किया। जेल से मुक्त होते ही वह हवाई जहाज से जर्मन पहुँचे। कमला की दशा अत्यन्त क्षीण हो चुकी थी। नेहरू जी की ओर एक बार स्निग्ध-और करुण दृष्टि से निहार कर उन्होंने अपनी लीला संवरण की।

कमलाजी की अकाल मृत्यु भारतीय ब्रिटिश शासन की पाशविक क्रूरता का जीवित दृष्टान्त है। मृत्यु के समाचार से देश भर में शोक छा गया। देश ने उनको अपनी श्रद्धांजली अर्पित की।

कमला नेहरू का जीवन भारतीय नारियों में त्याग, देश-सेवा, पति प्रेम और बलिदान की भावनाओं को सदा उत्पन्न करता रहेगा। उनकी कीर्ति गाथा भारतीय नारी के इतिहासों में अनुपम त्याग के आदर्श के रूप में सदा अङ्कित रहेगी।

प्रथम भारतीय महिला गवर्नर

स्वर्गीय श्री सरोजनी नायडू

मादक संगीत मय स्वर-लहरी, आकर्षक मुस्कराहट, तीक्ष्ण प्रतिभा मनोहर कविता, सरोजनी नायडू का नाम लेते ही नेत्रों के समक्ष नृत्य करने लगती हैं। सरोजनी नायडू ने अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा न केवल भारतीय साहित्य में अपितु विश्व साहित्य में अपना स्थान बना लिया है। स्नेह वात्सल्यपूर्ण मातृ हृदय, और असाधारण कवयित्री होने के साथ २ आप विख्यात कर्म राजनीतिज्ञ भी थीं। भारतीय स्वातन्त्रय आंदोलन के इतिहास में उनका नाम महिला नेत्रियों में सर्व प्रथम है।

जन्म—बाल्यकाल, शिक्षा, विवाह—सरोजनी का जन्म सन् १८७६ में दक्षिण हैदराबाद में एक विशिष्ट बंगाली ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम अघोर चट्टोपाध्याय था। वे बंगाल के प्रसिद्ध व्यक्ति थे और महान् वैज्ञानिक। सरोजनी पर उनका असाधारण स्नेह था वह इसको वैज्ञानिक और संगीतज्ञ बनाना चाहते थे। सरोजनी की काव्य प्रतिभा दैवी वरदान था वे बाल्यकाल से ही बंगला में कविता करने लगी थीं। ११ वर्ष की आयु में बीजगणित के एक जटिल प्रश्न पर माथा पच्ची करते इनकी लेखनी से कविता में श्रीतनी अकस्मात् बह निकली। इस घटना ने सरोजनी को उत्साहित किया। १२ वर्ष की आयु में आपने मैट्रिक

की परीक्षा पास की और १३ वर्ष की आयु में १३०० पंक्तियों की एक लम्बी कविता रच डाली । इससे पाठक सहज ही सरोजनी की काव्य-प्रतिभा का अनुमान लगा सकते हैं।

सामाजिक रूढ़ियों को आप उपेक्षा की दृष्टि से देखतीं। यही कारण था १६ वर्ष की आयु में हैदराबाद के स्वास्थ विभाग के उच्चाधिकारी डाक्टर राजुलु नायडू से प्रेमपाश में बंधकर आपने सन् १८६६ में विवाह कर लिया। समाज को उनका यह कृत्य असह्य था, परन्तु उन्होंने दृढ़तापूर्वक समस्त बाधाओं की उपेक्षा करके अपना मन्तव्य पूरा किया। विवाह करने के उपरान्त भी आपका विद्याप्रेम किंचित भी न्यून नहीं हुआ। विवाहोपरान्त इंगलैंड जाकर तीन वर्ष तक किंग्ज-कालेज और केम्ब्रिज कालेज में आपने शिक्षा ग्रहण की। यह वह दिन थे जब कि प्रायः समाज के शिरोमणि स्त्री शिक्षा को उपेक्षा ही नहीं घृणा की दृष्टि से देखते थे।

काव्य क्षेत्र में—बाल कवयित्री सरोजनी की काव्य-प्रतिभा दिन-प्रतिदिन पल्लवित होती गई। वे मातृभाषा के अतिरिक्त इंगलिश में भी कविता करने लगीं। देश-भक्ति की भावनाओं से पूर्ण होने के कारण आपकी कविता में भारतीय दृष्टिकोण का प्राधान्य था। सन् १६०५ में आपकी कविताओं का प्रथम संग्रह 'गोल्डन थ्रेसहोल्ड' छपा इसके कारण साहित्यिक संसार में आपकी ख्याति विस्तृत हुई। दूसरा संग्रह 'बर्ड आफ टाइम'' सन् १६१७ में प्रकाशित हुआ। तथा तीसरा संग्रह 'ब्रेकिन विंग'' १६४३ में निकला। उनकी समस्त कविताओं का संग्रह ''शेफर्ड फ्लूट'' नाम से छपकर संसार के समक्ष आ चुका है। उनकी कविताओं में कोमल सुकुमार भावनाओं के साथ २ राष्ट्रीयता की दीप्ति भी थी। वस्तुतः उनका संपूर्ण जीवन ही कवित्वमय था।

इस काव्य-भावना ने उनके राजनीतिक सामाजिक जीवन को भी सरस मधुर और रोचक बना दिया था। राष्ट्र उन्हें भारत कोकिला के नाम से स्मरण करता है।

राजनीतिक संघर्ष में—कुसुम कोमल कल्पनाओं में विहार करने वाली कवयित्री पराधीन देश को राजनीतिक दासता से मुक्ति के लिये विदेशी सत्ता के विरुद्ध कठोर संघर्ष करेगी यह किसको ज्ञात था। बाल्य-काल से सरोजनी के वीरहृदय में सामाजिक असमानता के विरुद्ध विद्रोहाग्नि जलती थी। इसका प्रमाण उन्होंने जाति बंधन तोड़कर विवाह करके दे दिया था। कवि का हृदय स्वभावतः संवेदेणशील होता है। भारत के असहाय आर्तजनों की करुण चीत्कारों को सुन और जनता की दरिद्रता को देखकर सरोजनी का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने देश सेवा करने का निश्चय किया। २७ वर्ष की आयु में उन्होंने पहला सार्वजनिक भाषण दिया, जिसे सुनकर मालवीय जी बहुत प्रभावित हुये। इधर राष्ट्रपिता गांधी जी अफ्रीका से अपने सत्याग्रह का सफल प्रयोग करके लौटे थे। प्रथम महासमर के बाद दुनिया की स्थिति डांवाडोल थी। भारतीय जनता में स्वाधीनता की चेतना उत्पन्न हो रही थी किन्तु ब्रिटिश शासकों ने पाशविक दमन से जन-आंदोलन को कुचलने की ठान ली। सन् १९१९ में पंजाब का भीषण हत्या-काण्ड हुआ। इस राक्षसी काण्ड का प्रभाव अंग्रेजों की प्रशंसिका सरोजनी पर भी पड़ा। वह कट्टर ब्रिटिश विरोधिनी बन गईं। और कार्य-क्षेत्र में उतरकर देश में स्थान-स्थान पर विदेशी सरकार के विरुद्ध प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। राजनैतिक प्रचार और संगठन के कार्य में सरोजनी ने असाधारण कार्य पटुता का परिचय दिया। इसके लिये उन्होंने अनेक कष्ट उठाये और महान्-त्याग किया।

सन् १९२५ में आपको अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। आपने अपने पद का कार्य योग्यता-पूर्वक संभाला। गांधी जी के कारावास में जाने पर आप सत्याग्रह आंदोलन की मुख्य-संचालिका बन गईं। २३ मई सन् १९३० को आप को बन्दी कर लिया गया। १९३१ में आप गोलमेज-कांफ्रेंस की सदस्य बनकर इंगलैंड गईं। आपने ब्रिटिश जनता के संमुख भारतीय शासन सत्ता के निर्दय अत्याचारों का भण्डाफोड़ किया। इसी सम्बन्ध में प्रचार के निमित्त आप अमेरिका भी पहुँचीं और नगर-नगर में ब्रिटिश विरोधी भाषणों की धूम मचा दी। वहां से लौट कर सन् १९३२ में पुनः सविनय अवज्ञा आंदोलन में आपने भाग लिया और आपको बन्दी बनाकर जेल भेज दिया गया। सन् १९४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह में भी आप गिरफ्तार हुईं और फिर सन् १९४२ में "अंग्रेजो भारत छोड़ो" के तूफानी आंदोलन के दिनों में भी आपको पकड़ कर जेल के सींकचों में जकड़ दिया गया जहां आप को कई साल तक रहना पड़ा।

नारी स्वाधीनता के लिये संघर्ष—सरोजनी देवी ने साहित्यिक क्षेत्र को समृद्ध बनाने और राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये जहां अनथक प्रयास किया वहां पददलित नारी जाती को वे एक क्षण के लिए भी न भुला सकीं। स्वयं अपना आदर्श प्रस्थापित करके उन्होंने भारतीय महिलाओं को स्वाधीनता से प्रेम करना सिखाया, इसके साथ ही उनमें स्वाभिमान और साहस की भावना भरी। उन्होंने दासता की बेड़ियों से जकड़े हुए भारत के नारी को मुक्ति का पथ दिखाया। उनके अन्ध-विश्वास को दूर करने के लिये, उनमें उत्साह का संचार करने के लिये, उनके मृत-प्राणों में नवीन स्फूर्ति लाने के

लिये श्री सरोजनी ने असाधारण श्रम किया। वे अखिल भारतीय महिला-संघ की प्रधान स्तम्भ थीं। पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण आपको सर्वथा पसन्द न था—वे अन्तस्तल से भारतीय थीं। भारतीय संस्कृति के प्राचीन आदर्शों के प्रति आपको अडिगनिष्ठ थी।

जातीय एकता का समर्थन—भारत में हिन्दु, मुस्लिम विद्वेष फैलाकर उनको आपस में लड़ाकर राज्य करना विदेशी शासकों की नीति थी। इसके उत्तर में राष्ट्रीय महासभा की नीति हिन्दू मुस्लिम एकता की नीति थी। सरोजनी नायडू इस नीति की प्रबल समर्थक थी। वे पराधीनता की शृङ्खलाओं को काटने के लिये एकता को आवश्यक समझती थीं। इस एकता की भावना की झलक उनके काव्य में भी प्राप्त होती है। मस्जिदों में जाकर आप मुसलमानों को समझातीं। भारतीय मुसलिम जनता भी आप के प्रति-भक्ति रखती थी। बापू का वरद-हस्त सदा आपके सिर पर रहता था। बापू आपके गुणों पर मुग्ध थे।

नायडू-परिवार—सरोजिनी का गृहस्थ जीवन सुख समृद्धि और शान्ति से पूर्ण था। उनके पति डा० नायडू महान् दार्शनिक, प्रतिभाशाली विद्वान्, मनीषी और अनुशासन प्रिय व्यक्ति थे। आपकी दो पुत्रियां तथा एक पुत्र जीवित है। आपकी पुत्री लीलामणि नायडू माता के समान ही विदुषी है। आपकी शिक्षा लन्दन के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हुई है। आज-कल आप हैदराबाद में महिला कालेज में प्रोफेसर हैं। अध्ययन उनका व्यसन है वे प्रायः सर्वदा किसी बड़े पुस्तकालय में अथवा अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय में अध्ययन में तल्लीन दिखाई देती हैं। दूसरी पुत्री पद्मजा नायडू से भारत का बच्चा-बच्चा परिचित है। हैदराबाद के निजाम के मानुषिक

अत्याचार के सजीव चित्र संसार के संमुख रखना आपका ही कार्य था। जयसूर्य आपके एक मात्र जीवित पुत्र हैं। सरलता और सज्जनता की साक्षात् प्रतिमा।

भारत की प्रथम महिला गवर्नर— देश की जनता के अगणित बलिदानों के फलस्वरूप राष्ट्र १५ अगस्त सन् १९४७ को स्वतन्त्र हुआ। सरोजनी युक्तप्रान्त की गवर्नर बनाई गईं। आपके इस असाधारण सम्मान से भारतीय महिलाओं का हृदय गौरव के गर्व से उद्भासित हो उठा। आपने-अपने पद का दायित्व योग्यता पूर्वक सम्भाला। साम्प्रदायिक उपद्रवों के भयानक दिनों में भी युक्त-प्रान्त को इस ज्वाला से बचाने का अधिकांश श्रेय सरोजनी नायडू को ही है।

स्वर्गवास—१ मार्च १९४९ का प्रभात देश के लिये अत्यन्त शोक-पूर्ण घटना के साथ आया। भारतीय राष्ट्र की नेत्री श्रीमती नायडू का देहान्त हो गया। समाचार फैलने में देर न लगी। देश भर में शोक के बादल छा गये। ५० वर्ष तक भारत राष्ट्र की अनथक सेवा करके वीरांगना सरोजनी नायडू स्वतन्त्रता का सुन्दर प्रभात देख कर स्वर्ग को प्रस्थान कर गईं। उनका जीवन भारतीय नारी के समस्त बलिदान, स्वार्थ त्याग, साहस, शिक्षा और निर्भीकता का आदर्श बन कर सदा चमकता रहेगा।

—:(०):—

देवी जोन आफ आर्क

फ्रांस की देवी

संसार की देश-भक्त वीरांगनाओं में देवी जोन आफ आर्क का नाम बड़े आदर और श्रद्धा से स्मरण किया जायगा। अपनी आयु के केवल १६ वर्षों में ही इसने फ्रांस की भूमि को विदेशियों के शासन से मुक्त करने के लिये जो साहसपूर्ण कृत्य किये उन्हें देख कर बड़े-बड़े साहसी वीर भी दांतों तले ऊंगली दबाने लगे। ऐसे ही बलिदानों के कारण फ्रांस की वीर प्रसविनी भूमि सदा प्रजातन्त्र और स्वाधीनता के प्रेमियों के लिये आदर्श रही है।

जिस समय जोन आफ आर्क का जन्म हुआ फ्रांस की एकता छिन-भिन्न हो चुकी थी ब्रिटिश शासन के भार से वहां की जनता उत्पीड़ित थी। लूटमार चोरी जारी आदि की अधिकता के कारण फ्रांस का सामाजिक जीवन अस्तव्यस्त हो चुका था यद्यपि फ्रांस भी स्वतंत्रता प्रेमी देश भक्त वीर विदेशी सत्ता के विरुद्ध संगठित होकर जहां-तहां संघर्ष कर रहे थे। पर दमनचक्र बुरी तरह उनको कुचल देता। जेलें भर गई थीं। सहस्रों व्यक्ति निर्वासित किये गये थे। फांसी पर लटकाना, सूली पर चढ़ाना, जीवित आग में जला देना उस समय के साधारण दण्ड थे। फ्रान्स के उद्धार की एक मात्र आशा यह थी किसी प्रकार भगोड़े नरेश को लाकर सिंहासन पर न बैठाया जाय। ऐसे समय में जोन का आविर्भाव हुआ।

६ जनवरी १४१२ ई० में दांरे भी नामक ग्राम में एक बालिका ने जन्म लिया। बचपन में कौन यह जानता था कि एक दिन इसी बालिका के हाथों फ्रांस का उद्धार होगा। उसके पिता का नाम जाके' दआर्क था। वह सामान्य कृषक थे। और उसकी जननी ईसाबेला ईश्वर की अनन्य भक्त थी। जोनके जीवन पर माताका बहुतप्रभाव पड़ा। वह बचपन से ही ईश्वर की भक्ति में संलग्न रहने लगी। नजदीक ही भावसे नामक गांव में उसकी शिक्षा हुई। इस ग्राम का शासक बर्गण्डी का ड्यूक था। जो फ्रान्स के राजा चार्ल्स का शत्रु और अंग्रेजी का मित्र था।

स्कूल के बच्चों में बहुधा इन बातों को लेकर वाद विवाद छिड़ जाता जिसमें दांरे भी के बच्चों को मार खानी पड़ती। इस के अतिरिक्त निर्धन कृषकों की गाये, बकरी आदि पशु हांक लेजाना, उन के घरों में आग लगादेना, किसी बात पर इन्कार करने पर बच्चों को कोड़ों से पीटना,-नित्य की सामान्य घटनायें थीं। जोन का बाल हृदय इन घटनाओं को देख कर बर्गण्डी के ड्यूक के प्रति घृणा से भर उठा। उससे और अंग्रेजों से प्रतिशोध लेने की भावना जोन के हृदय में बद्धमूल हो गई। उसने अंग्रेजों के हाथ से अपनी मातृभूमि को मुक्त करने की प्रतिज्ञा कर ली।

जोन अब युवती हो चली थी। एक दिन अपने घर के उपवन में घूम रही थी कि वह अकस्मात् गिर्जाघर की ओर मुड़ी। सहसा उसे जैसे कोई अलौकिक प्रेरणा हुई। उस ने सुना, मानो आकाशवाणी हो रही थी--"जोन उठ। उस कार्य में संलग्न हो जिस की पूर्ति के लिये तेरा जन्म हुआ है। देश की स्वाधीनता तुझे पुकार रही है। अपने राजकुमार चार्ल्स के समीप जा। उसकी सहायता से मातृभूमि को

बन्धन मुक्त करने के लिये शत्रु से संग्राम कर।" वस्तुतः यह उसके अपने हृदय की आवाज थी। जोन की कोमल आत्मा इस अद्भुत घटना से प्रथम तो कुछ भयभीत हो उठी किन्तु तत्काल उसने अपने भीतर अभूत पूर्व शक्ति का अनुभव किया। उसे प्रतीत हुआ कि स्वयं ईश्वर ने उसे यह आज्ञा दी है। उस ने तत्काल कहा कि "हे ईश्वर! मुझे तेरा आदेश स्वीकार है।"

इस घटना के उपरान्त जोन का जीवन—क्रम सर्वथा बदल गया। वह सदा गंभीर रहने लगी। बच्चों के से खेल कूद सब समाप्त हो गये देश को स्वतन्त्र करने के दायित्व बोध ने उस को बहुत ऊंचा उठा दिया। उस ने अपनी आत्मप्रेरणा की घटना अपने माता पिता को सुनाई। और कहा कि जब तक मातृ भूमि पराधीन है तब तक जीवन में आमोद-प्रमोद करना घोर अपराध है। मैं अपने देश को मुक्त करूंगी आप लोग मुझे आज्ञा दें, बाधक न बनें।

माता पिता ने स्नेह वश, समाज के भय और लोक लाज के कारण उसे उसके निश्चित पथ से च्युत करने के प्रयत्न किये कि जोन के हृदय में जलती देश भक्ति की प्रचण्ड ज्वाला को घृत आहुति के समान उन्होंने केवल प्रदीप्त ही किया। उसके माता पिता उसके उज्वल भविष्य से सर्वथा अपरिचित थे।

जोन ने अब राजकुमार चार्ल्स की खोज करनी प्रारंभ की। सर्व प्रथम उसने फ्रान्स की राजधानी लारेन पहुँच कर वहां के गवर्नर रौलेद-बोद्री कूर से अपनी ईश्वरीय प्रेरणावाली घटना कही और उससे प्रार्थना की कि वह उसे राजकुमार चार्ल्स के समीप पहुँचा दे। पहले तो गवर्नर ने बालिका जान कर टालने का प्रयत्न किया परन्तु जब

देखा कि यह किसी प्रकार मानती ही नहीं तब उसने नगर के प्रमुख पादरियों द्वारा उसके ईश्वर-प्रेरणा की परिक्षा करवाई। जब उसे निश्चित हो गया कि फ्रांस का उद्धार इस दिव्य आत्मा द्वारा निश्चित है तब उसने चार्ल्स से जोन के शीनो जाने की आज्ञा मांगी। आज्ञा मिलने के पश्चात् कतियम सैनिकों के साथ ११ दिन की कठिन यात्रा करके वह चार्ल्स के पास पहुँची।

चार्ल्स इस असाधारण बालिका को देख कर बड़ा प्रभावित हुआ। यात्रा से पूर्व ही जोन ने बाल कटवा कर पुरुष भेश धारण कर लिया था। हाथ में तलवार लेकर वह रणचण्डी ही बन गई थी। राजकुमार को संदेह हुआ कहीं शत्रु का षडयन्त्र न हो। उसने परीक्षा के लिये विद्वान् पादरी बुलाये। दरबार में उससे गहन धार्मिक और राजनीतिक प्रश्न किये गये। जोन ने निर्भिकता पूर्वक प्रश्नों का उचित और स्पष्ट उत्तर दिया उस की तेजस्विता और वाग्मिता को देखकर वे सब मुग्ध हो गये उन्होंने घोषित किया कि जोन वीरता की देवी है, ईश्वरीय सन्देश की बालिका है।

चार्ल्स ने उसे सैनिक शिक्षा दिलवाई। शीघ्र ही वह रण शिक्षा में पारंगत हो गई। यूरोप की यह प्रथम महिला थी जिसने पुरुष वर्ण धारण करके संग्राम में शत्रुओं के छक्के छुड़ाये थे।

रण भूमि में—जोन सबसे पहले ओर्लेनस को विजय करनी चाहती थी जिस पर ब्रिटिश सेना ने घेरा डाल रखा था। जोन ने आक्रमण किया, घमासान युद्ध के बाद ब्रिटिश सेना ने आहत होकर मैदान छोड़ दिया। विजय दुंदुभि बजा कर नगर निवासियों ने मुक्ति-दात्री देवी "जोन" का स्वागत किया। ओर्लेनस को जीत कर उसने

आस पास के छोटे छोटे कस्बों और नगरों को जीतने का उपक्रम किया।

उसका दूसरा लक्ष्य था रेम नगर में जा कर चार्ल्स का राज्याभिषेक करना। यह एक ऐतिहासिक नगर था जहां राज्याभिषेक होने के अनन्तर कोई राजा समस्त फ्रान्स पर राज्य करने का अधिकारी हो जाता था। चार्ल्स के लिये इस अधिकार का प्राप्त करना आवश्यक था—अतः जोन इसे पूर्ण करना अपना कर्तव्य समझती थी। चार्ल्स और सहस्रों सैनिकों को साथ लेकर जोन ने रेम नगर की ओर प्रयाण किया। मार्ग लम्बा था। रास्ते में ड्यूक के अधिकृत प्रदेशों से जोन को गुजरना था। जोन युद्ध की पूर्ण तैयारी के साथ स्वतन्त्रा की पताका लिये सब के आगे आगे चली जा रही थी। अनेकों नगरों पर अपनी विजय पताका फहरा कर जोन अन्त में चार्ल्स के साथ रेम नगर में प्रविष्ट हुई।

रेम निवासी अभी दुविधा में पड़े थे। वे दोनों ताकतों के प्रभाव में थे। जोन ने नगर में जा कर एक ओजस्विनी वक्तृता दी। वादविवाद में जो विजयिनी हुई, जनता को समझा दिया गया। सब जोन के साथ सहमत हो गये। अगले दिन जोन से अपने हाथ से चार्ल्स का धूम-धाम से राज्याभिषेक किया और फ्रांस का सम्राट घोषित करके उस से तीन प्रतिज्ञायें करवाईं।

१. धार्मिक अधिकारों की रक्षा करना.

२. प्रजा पर अनुचित दबाव न डालना.

३. न्याय तथा दया से राज्य करना.

इन प्रतिज्ञाओं से जोन के हार्दिक भावों का आभास मिलता है। जोन के हृदय में जनता के हित का कितना ध्यान था।

जोन की निरन्तर विजयों ने चार्ल्स का नाम समस्त ईसाई राष्ट्रों में प्रख्यात कर दिया। जोन जिस नगर में गुजरती लोग उसका भव्य स्वागत करते। आने की प्रतीक्षा में आंखें-बिछाये रहते। लोग उसे फ्रांस के उद्धार के लिये अवतीर्ण देवी समझते।

इसके विपरीत अंग्रेज जोन के नाम से कांपते और घृणा से मुख फेर लेते थे। वह जानते थे कि जोन फ्रांस से उनको समूल नाश करके ही शान्त होगी। अतएव वह उसके प्राणों के ग्राहक हो गये। उन्होंने उसे पकड़ने के षडयन्त्र करने प्रारम्भ किये।

चार्ल्स का राज्याभिशेक करने के उपरान्त जोन ने पैरिस तथा उसके आस पास की भूमि को शत्रु के हाथ से मुक्त करने का बीड़ा उठाया। इसके लिये उसने एक निपुण सेना तैयार की। नगर पर नगर जीतते हुए विजय वाहिनी आगे बढ़ी। ८ सितम्बर १४२६ को अंग्रेजों की एक बड़ी सेना से जोन की वाहिनी का मुकाबला हुआ थोड़ी ही देर में अंग्रेज सेनापतियों ने समझ लिया कि इस अलोकिक शक्ति संपन्न व महिला से पार पा सकना असम्भव है। अंग्रेजी सेना के पांव उखड़ गये। किन्तु इस युद्ध में जोन के भी बहुत से सैनिक आहत हुए। अतः उसे पुनः सैन्य संगठन के लिये लौटना पड़ा।

इस विजय को देखकर बर्गण्डी का ड्यूक सम्राट चार्ल्स से सन्धि करने को तैयार हो गया। परन्तु वह सन्धि के उपलक्ष में एक दो नगरों पर अपना अधिकार चाहता था। जोन सन्धि चर्चा के सर्वथा विरुद्ध थी। उसका विश्वास था कि निरन्तर युद्ध करके ही फ्रांस को शत्रुओं से रहित किया जा सकता है। संधि चर्चा से जनता का जोश ठन्डा पड़ जायगा सन्धि और युद्ध की दो विचार धाराओं के पारस्परिक संघर्ष से चार्ल्स की सैन्य शक्ति क्षीण होने लगी। युद्ध करके

स्वतन्त्रता प्राप्त करने को उत्सुक वीरगण जोन के आस पास जमा हो गये। अतः जोन ने पैरिस विजय के लिये प्रस्थान किया। यहां जोन का सामना ड्यूक तथा अंग्रेज दोनों की सेना से था। किन्तु जोन ने साहस न छोड़ा वह निरन्तर लड़ती जा रही थी। शत्रु सेना ने चारों ओर घेरा डाल दिया। उसने घेरा तोड़ने का प्रयत्न किया पर सफलता न मिली। अन्त में बर्गण्डी के ड्यूक के सैनिकों द्वारा कैद कर ली गई। ड्यूक ने १६ हज़ार पौण्ड में उसे अंग्रेजों के हाथ सौंप दिया।

जोन की गिरफ्तारी का समाचार फ्रांस की जनता पर वज्र के समान गिरा। पेरिस के एक बड़े विश्वविद्यालय की ओर से जोन पर नाम-मात्र का मुकद्दमा चलाया गया। विपक्षियों ने झूठे साक्षी उपस्थित किये उसपर सहस्रों दोष आरोपित किये गये। इस संकट में चार्ल्स भी कुछ काम न आया। उस कृतघ्न ने जोन के शत्रु के पंजे से मुक्त करने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

अंग्रेज पादरियों ने जोन से कहा कि यदि तुम प्रतिज्ञा करो कि अंग्रजों के विरुद्ध शस्त्र-ग्रहण कभी न करोगी तो तुम्हें मुक्त कर दिया जायगा।" जोन ने निर्भीकता पूर्वक उत्तर दिया—"मैंने अपने देश के हित के विचार से जो कुछ किया ठीक किया है। मैं जब तक जीवित रहूँगी देश की सेवा करती रहूँगी।" मेरे जीवन का एक एक क्षण फ्रांस के उद्धार के लिये होगा। तुम जो चाहो करो मैं अपने कर्तव्य पर अटल हूँ।

जेल में उसे पाशविक यातनायें दी गयीं। पीटा गया, अपमानित किया गया। एक वर्ष तक उसे कारावास में रहना पड़ा। इसके उपरान्त उसके अपराधों की एक लम्बी सूची तैयार की गई ताकि

संसार की आंखों में धूल झौंककर न्याय का नाटक रचा जा सके।

जोन को कहा गया कि यदि तुम कथित अपराधों की स्वीकृति देदो तो तुम को आजीवन कारावास का दण्ड दिया जायगा पर उस वीराङ्गना ने कहा कि मैंने कोई अपराध नहीं किया केवल देशप्रति अपने कर्तव्य का पालन किया है। जीवन भर बन्दी रहने की अपेक्षा मृत्यु उससे हजार गुना अच्छी है।

उसके अपराधों में कुछ यह हैं—

१. स्त्री होकर वह युद्ध करती है।

२. पुरुष वेष में स्त्री का रहना धर्म और समाज के नियमों की अवहेलना है।

३. ईश्वरीय प्रेरणा की बात गढ़कर उसने जनता को धोका दिया है और परमात्मा का नाम कलंकित किया है।

४. माता-पिता की आज्ञा का पालन न करके प्रकृति के पवित्र नियम को भंग किया है।

५. जो विजय का झूठा ढिंडोरा पीटती है वस्तुतः वह सहस्रों मनुष्यों की मृत्यु का कारण बनी है।

यह सब बातें ईसाई धर्म के प्रतिकूल हैं अतः तुम धार्मिक और राजनैतिक अपराधिनी हो। तुमको चिता में जीवित जलाने का दण्ड दिया जाता है। अब भी तुम अपने अपराध स्वीकार करके क्षमा मांग सकती हो।

वीर बाला जोन इस दण्ड को सुन कर किंचित् भी विचलित न हुई। उस ने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया—

"तुम मुझे चाहे जो दण्ड दो, किन्तु स्मरण रखो मैंने जो कुछ भी भला या बुरा किया है उस में चार्ल्स का कुछ हाथ नहीं है। मैं ने मनुष्य मात्र की भलाई और उन्हें स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाने के लिए ही जन्म लिया था। मैं मर रही हूं इस को मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं। फ्रांस कुछ ही दिनों में अवश्य स्वतन्त्र होगा। अंग्रेजी राज्य का फ्रांस से शीघ्र समूल नाश होगा।"

इस के बाद उस ने लोगों से क्षमा मांगी और अपनी आत्मा की मुक्ति के लिये प्रार्थना करने की विनय की। अकृतज्ञ चार्ल्स के लिए भी जोन की यह भक्ति देख कर लोगों की आंखों में आंसू आ गये।

इस के पश्चात् जोन ने क्रास मांगा और उसे हृदय से लगा लिया। उसे एक लट्ठ से बांध दिया गया। सहस्त्रों नर नारी इस दृश्य को देख रहे थे। चिता में आग लगा दी गई उस ने ६ बार ईसा को पुकारा और अपना सिर झुका लिया।

मृत-भस्म को सीन नदी में डलवा दिया गया। इस प्रकार उस वीर बाला का वीरतापूर्ण अन्त हुआ।

"फ्रान्स अमर है, और वह स्वाधीन होकर रहेगा, जोनके यह शब्द आज भी फ्रांस की भूमि पर गूंजते हैं। उसने अपने वीरतापूर्ण कृत्य तथा वीरतापूर्ण बलिदान से स्वतन्त्रता के प्रेमियों के लिये जो अमर आदर्श रखा वह चिरकाल तक उस के और उस की जन्मभूमि फ्रांस के नाम को उज्जवल करता रहेगा।

—:(०):—

श्रीमती ऐमेलिन गोल्डन पेंकहरस्ट

(नारी समानाधिकार आँदोलन की नेत्री)

व्यक्ति की स्वतन्त्रता की घोषणा करने के बाद भी पून्जीवाद ने नारी को दासत्व से मुक्त नहीं किया। सच तो यह है कि दासत्व से मुक्ति कोई किसी की करता नहीं—स्वाधीनता जैसी वस्तु किसी की कृपा से किसी को प्राप्त नहीं होती। उसे संघर्ष करके स्वयं प्राप्त करना पड़ता है।

ब्रिटिश नागरिकों को अपनी समाज-व्यवस्था पर अभिमान है। वह उसे उत्कृष्ट समझते हैं। किन्तु १९ वीं शदी के अन्त तक उन्होंने अपने यहां की महिलाओं को मतदान का अधिकार भी नहीं दिया था। इस मताधिकार को ग्रहण करने के लिये इङ्गलेण्ड की नारियों को एक महान् संघर्ष करना पड़ा था।

इस संघर्ष की नेत्री थीं ऐमेलिन गोल्डन पेंकहरस्ट।

जन्म, बाल्यकाल, विवाह—ऐमेलिन का जन्म लन्दन के एक साधारण परिवार में हुआ था। इनके माता-पिता के विचार पर्याप्त रूप से उदार थे तथापि उनके परिवार में कन्याओं की अपेक्षा बालकों पर ही अधिक ध्यान दिया जाता था। इस कारण ऐमेलिन की शिक्षा-दीक्षा पर माता-पिता ने अधिक ध्यान न दिया। परिवार के उपेक्षापूर्ण व्यवहार के कारण ऐमेलिन के हृदय में विद्रोह के बीज

अंकुरित हो गये। आयु की वृद्धि के साथ-साथ विद्रोही भाव अधिक परिपक्व होते गये।

सन् १८७६ में डाक्टर रिचर्ड पैंक हरस्ट से ऐमेलिन का विवाह हो गया। डाक्टर रिचर्ड पैंक हरस्ट उदार विचारों का राजनीतिज्ञ था। वह स्त्रियों के अधिकारों के प्रति सहानुभूति रखता था। डाक्टर के उच्च विचारों के कारण ऐमेलिन का गृहजीवन सुख और उल्लास से पूर्ण था। किन्तु यह भी संभवतः विधाता को स्वीकार न था पति चार बच्चों को छोड़कर परलोकवासी हुए और ऐमेलिन पर अपने बच्चों के पालन-पोषण का भार आ पड़ा।

वैधव्य के इस आघात ने उसकी रुचि को बदल दिया। किन्तु वह किंचित भी अधीर न हुई। उसने साहस पूर्वक बच्चों का पालन-पोषण तथा स्त्री-अधिकारों के लिये संघर्ष करने का कार्य जारी रक्खा। उसका विश्वास था कि जब तक पार्लामेण्ट में स्त्रियों को मतदान का अधिकार नहीं मिलेगा तब तक वे अन्य सुधारों को प्राप्त नहीं कर सकतीं।

ऐमेलिन एक कारखाने में काम करती थी। कारखाना की प्रबन्ध-कर्त्री सभा की यह सदस्य थी। वहां रहकर वह कारखाने में काम करने वाली स्त्रियों की दयनीय दशा को देखती थी। उसके साथ काम करने वाली बूढ़ी स्त्रियां बिना पीठ की बैंचों पर बैठके दिन भर परिश्रम करतीं, गर्भवती नवयुवतियों को प्रसवकाल तक निरन्तर परिश्रम करना पड़ता। छोटी-छोटी बालिकायें चिथड़ों से अपनी लज्जा ढांपे शीतकाल में दिन भर बरामदे में ठिठुरते हुए काम करती रहतीं। अनेक रोग से पीड़ित होने पर भी उनको सवेतन अवकाश नहीं दिया जाता। एक ही प्रकार के लिये पुरुषों को अधिक और स्त्रियों को कम वेतन दिया जाता। स्त्रियों के केस सुनने के लिए जो स्त्रियां जज बनाई जातीं उनके साथ भी पुरुष

जजों का व्यवहार निन्दनीय होता। उस काल के कानून की दृष्टि से महिलायें छोटे शिशु के समान समझी जातीं वे केवल पुरुष समाज से रक्षा प्राप्त करने और वीरता दिखाने की आशा कर सकती थीं परन्तु न्याय और स्वतन्त्रता की नहीं।

इस अन्याय और अत्याचार के विरोध में यदि आवाज उठाई जाती तो पादरियों और राजनीतिज्ञों और सामाजिक नेताओं की ओर से घोर विरोध होता। प्राचीन समाजव्यवस्था के ढांचे को बदलना पुरुषवर्ग को असह्य था। इन सब बातों ने ऐमेलिन के साहस को क्षीण नहीं किया किन्तु उसकी विद्रोह की ज्वाला को द्विगुणित कर दिया। उसने अपने सहायकों के साथ इस संघर्ष को शान्तिपूर्वक २५ वर्ष तक चलाया। किन्तु वह और उसके साथी युक्तियों और तर्कों द्वारा पुरुषों की अन्धविश्वास की चौड़ी दीवार को तोड़ने में सफल न हो सके।

शान्तिपूर्ण ढंग से सफलता न होते देखकर ऐमेलिन ने संघर्ष का पथ अपनाया एक दिन अकस्मात ही आर्थर बैलफोर नामक व्यक्ति—जिसका कि शासन में भी बड़ा हाथ था ऐमेलिन के पास आया। उसने ऐमेलिन के विचारों की सराहना करते हुए कहा कि अधिकार-प्राप्त करने का कार्य शान्तिपूर्ण तरीकों से नहीं हो सकता, वह तो शासनसत्ता को भली भांति झकझोर देने से ही संभव है। ऐमेलिन के हृदय में यह बात घर कर गई।

अब मताधिकार-आंदोलन की दशा बदल गई। पुरुषों से अधिकार के लिये स्त्रियां कटिबद्ध हो गईं। नित्य प्रति समाचार पत्रों में नारी मताधिकार संबन्धी दंगों का विवरण आने लगा।

पार्लियामेण्ट की खिड़कियों का टूटना, लूटमार, दंगाफसाद, यह

तो नित्य की साधारण बातें थीं। गिरजाघरों में प्रार्थना के समय गड़बड़ी, राजकीय उत्सवों में शोर, खेलों के मैदान में गड़बड़ी के समाचार, समाचार पत्रों में छपने लगे।

अंग्रेज नागरिक अराजकता और अव्यवस्था से बहुत घबराते हैं। वह जीवन को शान्तिपूर्ण ढङ्ग से बिताना पसन्द करते हैं। विशेषतः वहां के धनीमानी लोगों को इस प्रकार के वातावरण से बड़ी घृणा है। ऐमेलिन ने उनकी इस आदत से लाभ उठाना चाहा। वह मन्त्री मण्डल के सदस्यों के जीवन को अशान्तिपूर्ण बनाने का प्रयत्न करने लगी। इन सब हलचलों के फलस्वरूप ऐमेलिन को अनेक बार जेल की हवा खानी पड़ी। पुलिस की लाठियां खानी पड़ीं, लोगों से अपशब्द सुनने पड़े। परन्तु उसके हृदय के दृढ़ विश्वास को, उसकी धुन को कोई भी हिला न सका।

पार्लियामेण्ट के चुनाव थे। धड़ाधड़ चुनाव सभायें हो रहीं थीं। ऐसी ही एक सभा जो सरकारी उम्मीदवार एडवर्डग्रे के चुनाव-प्रचार के लिये हो रही थी उसमें ऐमेलिन की छोटी लड़की क्रिस्टबेल अपनी सहपाठिनी ऐनी के साथ भेजी गई। एडवर्डग्रे व्याख्यान दे रहे थे। उनके व्याख्यान को बीच में ही रोककर क्रिस्टेबेल तथा ऐनी ने प्रश्नों की बौछार प्रारम्भ कर दी। "तुम्हारी सरकार स्त्रियों के अधिकारों के लिये क्या कर रही है, या क्या करने वाली है। तुम पार्लियामेण्ट में जाकर हमारे अधिकारों के लिये क्या करने वाले हो—आदि आदि। वक्ताने प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार किया, इस पर लड़कियों ने सभा भवन में शोरगुल मचा दिया। एक को स्टेज पर से धक्के देकर नीचे गिरा दिया गया फिर दूसरी ने प्रश्न करने प्रारम्भ कर दिये उसके साथ भी वही व्यवहार हुआ। क्रिस्टीबेल के शरीर से रक्त बह

रहा था परन्तु उसने इसकी किंचित् भी चिंता न की और फिर उसी प्रकार स्टेज पर चढ़ गई और अपना भाषण प्रारम्भ कर दिया। लोग उसके साहस पर चकित थे। एडवर्डग्रे स्टेज पर खड़े मुंह ताक रहे थे। इसके उपरान्त किसी उम्मीदवार की चुनाव-सभा शान्ति से न हो सकी। सभी जगह स्त्रियां प्रश्नों की बौछार कर देतीं; उत्तर न पाकर शोरगुल मचातीं।

विंस्टन चर्चिल की एक चुनाव सभा में स्त्रियों की भीड़ ने उनका पीछा किया। प्रधान-मंत्री लायड जार्ज ने स्त्रियों के इस शोरोगुल को बिल्लियों की म्याऊं म्याऊं कह कर उड़ाना चाहा तो ऐमेलिन की दूसरी लड़की सिलविया ने शहर की निर्धन औरतों को साथ लेकर सरकारी गृह पर धावा बोल दिया। अधिकारी अपना अपना काम छोड़ कर मोटरों में भाग निकले। इस सभा में पहली बार ऐमेलिन पैंकहरस्ट ने अपनी ओजस्वी वक्तृता दी। वक्तृता की भाषा सरल और प्रवाह-पूर्ण तथा युक्ति-युक्त थी। इस भाषण को सुन कर स्त्रियां पार्लामेण्ट के द्वारों पर टूट पड़ीं। पुलिस ने दमन के द्वारा उनको पीछे हटा दिया। पुलिस के हमले से आहत होकर स्त्रियों ने क्रुद्ध सर्पिणी की भांति निश्वासले प्रतिशोध लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उनका आंदोलन दिन प्रति दिन क्रांतिकारी रूपधारण करने लगा। यहां तक कि एक दिन एक नवयुवती ने प्रधान-मंत्री लायडजार्ज के घर पर बम भी रख दिया। एक विद्यार्थी महिला ने हेनरी जेम्स की चित्र-शाला के चित्र नष्ट-भ्रष्ट कर दिये। वेस्टमिन्स्टर के कब्र-गृह में जाकर कब्रें नष्ट कर दीं। लेटरबक्सों में तेजाब डाला जाने लगा। सरकारी इमारतों के शीशे, खिड़कियां तोड़ डाली गईं—सारांश यह कि गोल्डन ऐमेलिन के नेतृत्व में ब्रिटेन की स्त्रियों ने अपने न्यायोचित अधिका-

रों की प्राप्ति के लिये सरकारी कार्यों में बाधायें उपस्थित कर दीं।

श्रीमती ऐमेलिन को कैद करके डाटरमूर जेल भेज दिया गया क्योंकि शासकों की दृष्टि में स्त्रियों के हिंसात्मक कार्य उसी के प्रचारका परिणाम थे। ऐमेलिन को जेल भेजने के विरोध में सहानुभूति रखने वाली स्त्रियों ने जेल के समीपवर्ती जंगलों में आग लगा दी। एक प्रसिद्ध त्योहार के दिन स्त्रियां जलूस बनाकर चलीं तो पुलिस ने घोड़े दौड़ा कर जुलूस को तितर-बितर कर दिया। अनेक स्त्रियां घायल हुईं और दो तो घोड़ों की टापों से कुचल कर मृत्यु का ग्रास बनीं। इस घटना ने स्त्रियों की क्रोधाग्नि में घृताहुति का काम किया। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों तथा पादरियों ने भी इस दमन में पुलिस की सहायता की।

जेल में भी ऐमेलिन के साथियों ने संघर्ष शुरु कर दिया। ऐमेलिन ने भूख हड़ताल कर दी इसकी सहानुभूति में सैंकड़ों स्त्रियों ने भूख हड़ताल कर दी। जेल अधिकारी बलपूर्वक नलियों द्वारा उनको भोजन देने लगे—किन्तु प्रतिरोध के कारण उन्हें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता। जब ऐमेलिन की बारी आई तो उसने गरज कर डाक्टर को कह दिया कि मेरे साथ यदि बलपूर्वक यह व्यवहार किया गया तो तुम्हारे लिये और तुम्हारी सरकार के लिये यह अच्छा न होगा। डाक्टर और सिपाही उसकी निर्भीक बात से दंग रह गये। इस सम्बन्ध में पार्लीमेंट में प्रश्नोत्तर भी हुए। वहां इस आन्दोलन की हंसी उड़ाई गई जिसके विरोध में हजारों महिलायें जेल जाने को उद्यत हो गईं।

एक बार मन्त्रियों की सफलता के लिये एक चर्च में प्रार्थना होने वाली थी। वहां पर दो स्त्रियों ने स्वयं गाना प्रारम्भ कर दिया कि

ईश्वर हमारी प्रिय नेत्री एमेलिन को चिरंजीव करे जिसके घोर परिश्रम तथा पवित्र नेतृत्व में हम अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रही हैं। इस पर एक अशान्त पादरी ने उनके बाल नोचे, उन्हें पोटा और चर्च से बाहर निकाल दिया।

अपनी नेत्री को कारावास से मुक्त कराने के लिये स्त्रियां उतावली हो रही थीं। स्थान-स्थान पर विरोध प्रदर्शन हो रहे थे। एक दिन एक खेल के मैदान में जहां कि खेल होने वाला था—झंडियों को उखाड़ कर उनके स्थान पर—"स्त्रियों को अधिकार दो", "स्त्रियों से न्याय करो" इत्यादि बड़े-बड़े मोटो चिपका दिये गये। एक बार घुड़-दौड़ के मैदान में एक नवयुवती ने बादशाह के घोड़े की बाग पकड़ ली और उस से ऐमेलिन की मुक्ति के सम्बन्ध में पूछा—घोड़ा बिदक गया—नवयुवती घोड़े के नीचे दब कर मर गई।

इधर सरकार ने अनशन व्रत तोड़ने के लिये कानून पास कर दिया। अनशन के कारण जिनकी अवस्था शोचनीय होती उन्हें छोड़ दिया जाता, अवस्था ठीक होते ही फिर पकड़ लिया जाता। ऐमेलिन के साथ भी पुलिस वाले ऐसा ही व्यवहार करते मूर्छित होते छोड़ देते और मूर्छा टूटने पर गिरफ्तार कर लेते। अनेक बार उसकी सहयोगिनियां अपने को ऐमेलिन बताकर गिरफ्तार करवा देतीं और ऐमेलिन बचकर व्याख्यान देती फिरती। एकबार इसी प्रकार भाषण देते हुए एमेलिन को पुलिस ने स्टेज से नीचे घसीटना चाहा। जैसे ही वह आगे बढ़े फूलों में छिपे हुए शूलों से बिंधकर बिलखाते हुए वापस लौट गये। पुलिस के लाठी चार्ज के प्रत्युत्तर में व्यायामशाला की शिक्षिकाओं ने लाठी चलाकर आत्मरक्षा की।

सम्राट को भेजे गये प्रार्थना पत्र गृह मन्त्री की रद्दी की टोकरी

में विश्राम करते यह देखकर ऐमिलिन ने घोषणा की कि वह स्वयं प्रार्थना पत्र लेकर सम्राट की सेवा में उपस्थित होगी। यह समाचार सुनकर गृह मन्त्री ने पुलिस की पूरी टुकड़ी महल के बाहर नियुक्त कर दी। जब ऐमेलिन वहां पहुँची तब गृह मन्त्री ने यह कहकर कि वह सरकारी अपराधी रह चुकी है प्रार्थना पत्र लेने से इन्कार कर दिया।

एक दिन सम्राट और सम्राज्ञी चित्रपट देखने गये तब रंगमंच पर खड़े होकर तीन स्त्रियों ने निर्भिकतापूर्वक पुलिस के अत्याचारों की दुहाई दी। इस प्रकार धीरे धीरे आंदोलन त्याग और बलिदान के फलस्वरुप जनता की सहानुभूति स्त्रियों के आंदोलन की ओर बढ़ने लगी। १९१२ तक तो शासन ने इस ओर सर्वथा ध्यान न दिया। किन्तु इन असहाय अबलाओं से वह पुलिस और सेना की सहायता से भी अपने मन्त्रियों और पदाधिकारियों की रक्षा न कर सका।

देश के बड़े बड़े नेता, और वैरिस्टरों ने अब इस मामले में हस्तक्षेप किया और स्त्रियों को जेल से छुड़ाने के उपाय करने लगे। पुरुष स्त्रियों से भी आगे बढ़कर उनका समर्थन करने लगे। सन् १९१४ में जब प्रथम यूरोपीय महा समर छिड़ा—ऐमेलिन ने अपनी मातृभूमि पर संकट की घटायें उमड़ती देखीं तब उसने आंदोलन बन्द करने की घोषणा की और मातृभूमि रक्षा के युद्ध में युवतियों से सहयोग देने की मार्मिक अपील की।

ऐमेलिन के महान् त्याग, और प्रचार, आंदोलन के कारण इंग्लेण्ड के बुद्धिजीवी वर्ग की सहानुभूति नारी-आंदोलन से हो गई। सन् १९१७में महायुद्ध विजय प्राप्त करके लायडजार्ज जब प्रधान मन्त्री बने तब उन्होंने सर्वप्रथम स्त्री-मताधिकार का प्रस्ताव पास किया। सम्राट ने भी अपनी अनुमति दे दी। तभी से इंग्लेण्ड की महिलाओं की सामाजिक स्थिति सुदृढ़ हो गई। राजनैतिक अथवा

सामाजिक जीवन में उपेक्षापूर्ण व्यवहार अब बन्द हो गया। वे अब पुरुषों के साथ-साथ राजनैतिक कार्यों में भाग लेने की अधिकारिणी हो गईं।

श्रीमती ऐमेलिन गोल्डन पैंकहरस्ट को ही इसका श्रेय है। इसी के अनथक आंदोलन और अभूतपूर्व बलिदानों के कारण इङ्गलेण्ड का नारी समाज यह स्थान प्राप्त कर सका।

ऐमेलिन अब बूढ़ी हो गई। उसके नवयुवक पुत्रों की मृत्यु ने उसके कोमल हृदय को आहत कर दिया। अन्ततः १६ जून १६२८ को इस संसार से चल बसीं। आज उनकी प्रस्तरमूर्ति पार्लमिएट भवन के सम्मुख गर्व से खड़ी है।

उसके जीवन की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा है कि अधिकार संघर्ष से प्राप्त किये जाते हैं भिक्षा मांग कर नहीं।

—(०)—

बहिन निवेदिता

निवेदिता बहन अभारतीय होते हुए भी भारतीय महिला-रत्नों में से एक रत्न हैं। आप ने भारतीय स्त्री-सुधार आन्दोलन, अनाथ-पीड़ितों की साहयता में जो स्तुत्य कार्य किया है उसे भारतीय कभी नहीं भूल सकते।

बहन निवेदिता का जन्म-नाम मिस आर्गेरैट एलिजबैथ नोबल था और वह आयलैंण्ड निवासी पादरी एस० आर० नोबल की पुत्री थी। निवेदिता का जन्म २८ अक्तूबर १८६७ को हुआ और जब उन्होंने युवावस्था में पदार्पण किया तो स्वामी विवेकानंद जी के परामर्श से वे भारतीय स्त्री-समाज की सेवा के निमित्त भारत आ गईं। भारत को अपनी मातृ-भूमि एवं उस के अधिवासियों को बहन-भाई समझ कर ही निवेदिता यहां आई। इसी भावना वश उन्होंने अन्य भारतीयों की भांति भारत की सभी समस्याओं को अपनाया। जो भी भारतीय उन के मार्ग में आया, उसने उन्हें सत्य अर्थों में भारतीय देखा। अनेकों ने यहां तक कहा है कि निवेदिता भारतीयों की अपेक्षा कहीं अधिक भारत-भूमि से प्यार करती थी, उन्हें जो सुख भारतीयों की सेवा में मिलता था, वह अन्यत्र किसी में नहीं। उन का धर्म—उनका कर्त्तव्य केवल एक ही था—और वह थी भारतीयों की सेवा।

भारत की सेवा के व्रत को सफल करने के लिए उन्होंने देश भर में घूम-घूम कर भाषण दिये। उनके भाषणों को सुन कर भारतीय-

जनता अत्यधिक प्रभावित होती थी। उन्होंने भारतीयों की वास्तविक दशा का परिचय कराने के लिए पुस्तकें लिखीं। उनकी इच्छा थी कि पश्चिम के लोग पूर्व की सभ्यता एवं संस्कृति को समझें। भारतीयता का अध्ययन कर वे इस निश्चय पर पहुँची थीं कि पश्चिम की अपेक्षा पूर्व कहीं अधिक सुन्दर है। जिन दिनों भारत में शिक्षा का आज की भांति प्रचार नहीं था, तब उन्होंने शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की। निश्चय ही ऐसी परोपकारिणी महिला की जीवनी भारतीयों के लिए आदर्श है—और रहेगी।

बहन निवेदिता के पिता मान्चैस्टर में दीन दुखियों की सेवा किया करते थे। इस सेवा-भाव को पुत्री ने पिता से ग्रहण किया। कहा जाता है कि निवेदिता के पिता उन्हें अत्यधिक प्यार करते थे और यह भी कहा करते कि निवेदिता बड़ी होने पर संसार में ख्याति पायेगी। एक बार श्री नोबल को एक मित्र उनसे मिलने गये। यह मित्र भारत में भी रह चुके थे। श्री नोबल ने निवेदिता को उनके समक्ष उपस्थित किया। मित्र ने निवेदिता के गुणों को देखा तो बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि "निवेदिता बड़ी होकर भारत जायगी और वहां भारतीयों के हित का कार्य करेगी। उस मित्र की भविष्यवाणी सत्य हो कर ही रही।

समय समय पर श्री नोबल तथा उन के परिवार में भारत सम्बन्धी बहुत चर्चा होती रहती सभी को जैसे भारतवर्ष से मोह-सा होने लगा था। अब क्या था, जो भी भारतीय इंग्लैंड जाता, श्रीनोबल के यहां ही ठहरता। इस प्रकार सारा का सारा परिवार भारत से भली प्रकार परिचित होने लगा। निवेदिता तो और भी अधिक चाव से भारत के विषय में सुना करतीं। उन्हें

जब यह मालूम हुआ कि भारतवर्ष में शिक्षा की अधिक न्यूनता है, तो उन्हें बहुत ही दुख हुआ।

निवेदिता बड़ी हुई, उनके पिता को भी यह अनुभव होने लगा कि निवेदिता अब कोई महान् पग उठाने जा रही है। अतः उन्होंने अपनी पत्नी को समझा दिया कि यदि निवेदिता कोई कार्य करना चाहे, तो तुम उसके मार्ग में बाधा न बनना। पत्नी ने पति को पूर्ण विश्वास दिलाया। अभी निवेदिता बड़ी न हो पाई थीं कि श्रीनोबल का देहान्त हो गया। कई बरस इसी भांति बीत गये। एक दिन निवेदिता ने माता से कहा—"मां, मैं भारत जाऊंगी।" सुनते ही मां का कलेजा कांप-सा गया, किंतु उसने उन्हें निरुत्साह नहीं किया। निवेदिता के हृदय में जो भावनायें थीं, माता उन्हें जानती थी। उसे भली प्रकार ज्ञान था कि उसकी कन्या ने सेवा-व्रत ले रखा है और इस कारण वह उसी मार्ग पर अग्रसर होगी।

बहन निवेदिता ने जब अपनी शिक्षा समाप्त की तो उसने लंदन की एक ग़रीब बस्ती में बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिये विद्यालय खोल लिया। वह दीन-दुखियों की यथोचित सेवा करती और साथ ही विद्यालय का कार्य भी। यह करने के साथ ही वह स्त्री-सुधार के कार्य के प्रति भी चिंचित् रहती।

स्वामी विवेकानन्द जी से भेंट—जिन दिनों निवेदिता लन्दन में विद्यालय का संचालन कर रही थीं, उन्हीं दिनों स्वामी विवेकानन्द जी लन्दन पधारे। स्वामी जी अमरीका के सर्व-धर्म-सम्मेलन में सम्मिलित होकर मित्रों के अनुरोध से लन्दन आये थे। स्वामी जी ने अमरीका में हिंदुत्व पर अनेक व्याख्यान दिये थे और उनकी चर्चा

सभी देशों में थी। जब स्वामी जी स्वयं लंदन आये तो निवेदिता उनसे भेंट किये बिना कैसे रह सकती थी? फलतः निवेदिता ने स्वामी जी से कई बार भेंट की। उन्होंने स्वामी जी के अनेक भाषणों को सुना परन्तु सुनने के बाद वह इस निश्चय पर पहुँची कि उनमें नव-संदेश तो कोई है नहीं, सब पुरानी ही बातें हैं। किंतु जब उन्होंने घर लौट कर स्वामी जी के कथन पर गम्भीरता-पूर्वक विचार किया तो उन्हें सब कुछ नवीन ही जान पड़ा। स्वामी जी के विचारों से पूर्णतया सहमत न होते हुए भी मन ही मन उन्होंने सोचा कि स्वामी जी महान् हैं—महात्मा हैं।

कुछ काल लन्दन में रह कर स्वामी जी भारत लौट आये, किन्तु एक ही बरस बाद पुनः वहां गये। अब की बार वह कई मास तक वहां रहे और उन्होंने कई भाषण दिये। स्वामी जी ने ज्ञान-पिपासुओं के लिए एक अस्थायी विद्यालय भी स्थापित किया। निवेदिता उसमें प्रविष्ट हुईं और उन्होंने स्वामी जी से ज्ञान-उपार्जन किया। इसके अनन्तर स्वामी जी फ्रांस—जर्मनी आदि देशों में गये और पुनः लण्दन में ठहरे। निवेदिता इस बार भी उनसे भेंट करने गईं। इस बार निवेदिता ने बहुत देर तक स्वामी जी के साथ वार्त्तालाप किया और इसी वार्त्तालाप के बीच स्वामी जी ने निवेदिता से कहा, "मैं भारतीय महिला-समाज के लिये कुछ करना चाहता हूँ और उसमें तुम मेरी बहुत सहायता कर सकती हो। मुझे विश्वास है, तुम भारत चलने का निश्चय करोगी।"

अब क्या था, स्वामी जी के इन शब्दों ने निवेदिता पर गम्भीर प्रभाव किया। उस समय तो वह निश्चय न कर सकीं किंतु बाद में उन्होंने स्वामी जी को लिखा कि मैं भारतीयों की सेवा के लिए भारत

आने को तय्यार हूँ। इसके उत्तर में स्वामी जी ने लिखा, "मैं मृत्यु-पर्यन्त तुम्हारा साथ दूंगा—चाहे तुम वेदान्ती बनो या न, मैं तुम्हारी सहायता करूंगा।"

भारतवर्ष में—सन् १८९८ के प्रारम्भ में निवेदिता इङ्गलैण्ड से भारत के लिए चलीं। भारत पहुंच कर निवेदिता 'रामकृष्ण मिशन' के केन्द्र वेलूर में पहुँची। गङ्गा-तीर पर उनके लिए एक झौंपड़ी का निर्माण किया गया। स्वामी जी प्रतिदिन निवेदिता के पास प्रातः समय जाते और उन से अपने ध्येय की चर्चा करते। इसके अतिरिक्त निवेदिता ने आश्रमवासियों की दिनचर्या को भी भली प्रकार ग्रहण कर लिया। कुछ मास वहां रह कर स्वामी जी आश्रमवासियों सहित देश का परि-भ्रमण करने निकले। संयुक्त प्रान्त के अनेक नगरों से होते हुए स्वामी जी पंजाब पहुंचे। तदुपरान्त काश्मीर चले गये। इस बीच निवेदिता ने भारतीय-अवस्था का भली प्रकार अध्ययन किया। सहस्रों व्यक्तियों को देखा, उन से बात-चीत की। स्वामी जी भी निवेदिता को इस लम्बी यात्रा में अनेक विषयों पर समझाया करते। अब निवेदिता साधना करने लगी थीं। उनका समय केवल भ्रमण में ही नहीं, प्रत्युत प्रभु-भक्ति में ही बीतता था; किन्तु कभी-कभी उन के हृदय में भ्रम उत्पन्न हो जाता था। स्वामी जी इस अवस्था को जानते थे और समय-समय पर उनके भ्रमों को शान्त कर दिया करते। इस प्रकार निवेदिता साधना-पथ में भी सफल हो गईं।

जब ऐसा हो गया तो आपसे आप निवेतिता ने हिन्दु धर्म को ग्रहण कर लिया। इस धर्म-परिवर्तन के समय ही उन्हें निवेदिता नाम दिया गया था। अब वे स्वामी जी द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन की सदस्या बन गईं।

सभी देशों में थी। जब स्वामी जी स्वयं लंदन आये तो निवेदिता उनसे भेंट किये बिना कैसे रह सकती थी ? फलतः निवेदिता ने स्वामी जी से कई बार भेंट की। उन्होंने स्वामी जी के अनेक भाषणों को सुना परन्तु सुनने के बाद वह इस निश्चय पर पहुँची कि उनमें नव-संदेश तो कोई है नहीं, सब पुरानी ही बातें हैं। किंतु जब उन्होंने घर लौट कर स्वामी जी के कथन पर गम्भीरता-पूर्वक विचार किया तो उन्हें सब कुछ नवीन ही जान पड़ा। स्वामी जी के विचारों से पूर्णतया सहमत न होते हुए भी मन ही मन उन्होंने सोचा कि स्वामी जी महान् हैं—महात्मा हैं।

कुछ काल लन्दन में रह कर स्वामी जी भारत लौट आये, किन्तु एक ही बरस बाद पुनः वहां गये। अब की बार वह कई मास तक वहां रहे और उन्होंने कई भाषण दिये। स्वामी जी ने ज्ञान-पिपासुओं के लिए एक अस्थायी विद्यालय भी स्थापित किया। निवेदिता उसमें प्रविष्ट हुई और उन्होंने स्वामी जी से ज्ञान-उपार्जन किया। इसके अनन्तर स्वामी जी फ्रांस—जर्मनी आदि देशों में गये और पुनः लण्दन में ठहरे। निवेदिता इस बार भी उनसे भेंट करने गई। इस बार निवेदिता ने बहुत देर तक स्वामी जी के साथ वार्त्तालाप किया और इसी वार्त्तालाप के बीच स्वामी जी ने निवेदिता से कहा, "मैं भारतीय महिला-समाज के लिये कुछ करना चाहता हूं और उसमें तुम मेरी बहुत सहायता कर सकती हो। मुझे विश्वास है, तुम भारत चलने का निश्चय करोगी।"

अब क्या था, स्वामी जी के इन शब्दों ने निवेदिता पर गम्भीर प्रभाव किया। उस समय तो वह निश्चय न कर सकीं किंतु बाद में उन्होंने स्वामी जी को लिखा कि मैं भारतीयों की सेवा के लिए भारत

आने को तय्यार हूँ। इसके उत्तर में स्वामी जी ने लिखा, "मैं मृत्यु-पर्यन्त तुम्हारा साथ दूंगा—चाहे तुम वेदान्ती बनो या न, मैं तुम्हारी सहायता करूंगा।"

भारतवर्ष में—सन् १८९८ के प्रारम्भ में निवेदिता इङ्गलैण्ड से भारत के लिए चलीं। भारत पहुँच कर निवेदिता 'रामकृष्ण मिशन' के केन्द्र बेलूर में पहुँची। गङ्गा-तीर पर उनके लिए एक झोंपड़ी का निर्माण किया गया। स्वामी जी प्रतिदिन निवेदिता के पास प्रातः समय जाते और उन से अपने ध्येय की चर्चा करते। इसके अतिरिक्त निवेदिता ने आश्रमवासियों की दिनचर्या को भी भली प्रकार ग्रहण कर लिया। कुछ मास वहां रह कर स्वामी जी आश्रमवासियों सहित देश का परि-भ्रमण करने निकले। संयुक्त प्रान्त के अनेक नगरों से होते हुए स्वामी जी पंजाब पहुँचे। तदुपरान्त काश्मीर चले गये। इस बीच निवेदिता ने भारतीय-अवस्था का भली प्रकार अध्ययन किया। सहस्रों व्यक्तियों को देखा, उन से बात-चीत की। स्वामी जी भी निवेदिता को इस लम्बी यात्रा में अनेक विषयों पर समझाया करते। अब निवेदिता साधना करने लगी थीं। उनका समय केवल भ्रमण में ही नहीं, प्रत्युत प्रभु-भक्ति में ही बीतता था; किन्तु कभी-कभी उन के हृदय में भ्रम उत्पन्न हो जाता था। स्वामी जी इस अवस्था को जानते थे और समय-समय पर उनके भ्रमों को शान्त कर दिया करते। इस प्रकार निवेदिता साधना-पथ में भी सफल हो गईं।

जब ऐसा हो गया तो आपसे आप निवेतिता ने हिन्दु धर्म को ग्रहण कर लिया। इस धर्म-परिवर्तन के समय ही उन्हें निवेदिता नाम दिया गया था। अब वे स्वामी जी द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन की सदस्या बन गईं।

हिन्दू-धर्म ग्रहण करने के कुछ ही दिन बाद कलकत्ता में भीषण महामारी का प्रकोप हुआ। कलकत्ता नगर से लोग भाग रहे थे। सभी ओर भगदड़ मची हुई थी। इस दशा को देख कर रामकृष्ण संघ मौन कैसे रह सकता था। संघ की ओर से शीघ्र ही सहायता का कार्य आरम्भ किया गया और निवेदिता को इसके संचालन का कार्य-भार सौंपा गया। निवेदिता ने नगर की सफाई एवं महामारी के कीटाणुओं को नष्ट करने के निमित नवयुवकों का एक सङ्गठन निर्माण किया। कहा जाता है कि एक दिन एक दरिद्र बालक निवेदिता के पास लाया गया। उसके मां-बाप महामारी के ग्रास बन चुके थे और बालक भी उससे पीड़ित था। निवेदिता ने मां की भांति उसकी रात-दिन सेवा की बालक निवेदिता को मां कहने लग गया, किन्तु निवेदिता की अहर्निश सेवा उसकी रक्षा न कर सकी।

महामारी का प्रकोप शांत हो जाने पर निवेदिता ने उत्तर कलकत्ता में विद्यालय की स्थापना की। विद्यालय की सफलता के लिए धन की आवश्यकता थी, इस लिए निवेदिता स्वामी जी के साथ इङ्गलैंड गईं। उन दिनों स्वामी जी का स्वास्थ्य गिर रहा था। इस यात्रा में निवेदिता ने स्वामी जी के सब प्रवचनों को लिख लिया। लन्दन में कुछ दिन ठहर कर निवेदिता धन-संग्रह के लिये अमरीका गईं—वहां उन्होंने भारतीय-स्त्रियों की उच्चता के विषय में अनेक भाषण दिये। अमरीका से वह पुनः इङ्गलैण्ड लौटीं और स्वामी जी से आ मिलीं। कुछ दिन बाद स्वामी जी तो लौट आये, किन्तु निवेदिता लण्दन में ही रहीं। लगभग एक वर्ष पश्चात् वह भारत आईं और उन्होंने देखा कि स्वामी जी की दशा अत्यधिक चिन्ताजनक है। थोड़े ही दिन

बाद उनका देहान्त हो गया। स्वामी जी के देहावसान पर निवेदिता ने स्वामी जी के ध्येय को और भी दृढ़तापूर्वक प्रसारित करने का निश्चय किया।

भारतीयों की यथार्थ रूप में सेवा करने के लिये उन्होंने निश्चय किया कि उनके बीच रहा जाय। तदनुसार कलकत्ता में जहां संकीर्ण हिन्दुओं के घर थे, उन्होंने भी एक मकान किराये पर लिया। अब वह एक हिन्दू नारी की भांति जीवन-पालन करने लगीं। उन्होंने हिन्दू देवियों से बात चीत करनी चाही, तो लोग शंका करने लगे। निवेदिता के निकट भी कोई नहीं आना चाहता था। यहां तक कि उन्हें भोजन बनाने के लिये हिन्दू नौकर भी नहीं मिल पाता था। इस पर वह कई-कई दिन फलहार पर ही रहीं। यह सब होने पर भी वह निराश नहीं हुई। उन्हें तो मालूम ही था कि भले कार्यों में विपत्तियां आती ही हैं। फलतः उन्होंने बच्चों को प्यार करना आरम्भ किया। शनैःशनैः उनके माता-पिता भी निवेदिता के गुणों के प्रति आकर्शित होने लगे। जो भी उनसे परिचित होता, वही अपने भाग्य को सराहता। लोग उन्हें देवि समझने लगे। अब उन्होंने बच्चों के लिये पाठशाला की स्थापना की। बच्चे उनके पास बहुत प्रसन्न रहते। धीरे-धीरे उन्होंने विवाहित स्त्रियों को शिक्षित करने का भी प्रबन्ध किया, किंतु निवेदिता इतने से ही संतुष्ट न हुईं, क्योंकि उन्हें विधवाओं एवं अनाथों की दशा का भी तो ज्ञान था। उन्होंने इनकी भी सहायता का कार्य आरम्भ किया। उन्हें अपने घर में स्थान देतीं और शिक्षा भी प्रदान करतीं। अब निवेदिता का घर आश्रम बन गया था। अन्य भी कई देवियां उनके कार्य में सहायता देने लगीं। उनके ऐसा करने से कई विधवाओं एवं अनाथों को आश्रम मिला।

आश्रमवासियों को परिश्रमी बनाने की भावना से निवेदिता स्वयं घर को बुहारतीं। और एक बार तो उन्होंने गली को भी अपने हाथों साफ किया था। इन परोपकार के कार्यों के लिये वह दान नहीं मांगने जाती थीं। इस आश्रम के संचालन के निमित्त उन्होंने किताबें लिख-लिखकर धन संग्रह किया था और उसीसे काम चल जाता। इसके अतिरिक्त इङ्गलैण्ड से भी एक सज्जन उन्हें धन भेजा करते थे। यह सज्जन निवेदिता को पुत्री समान देखते थे और उनके कार्यों के लिये उन्हें अभिमान था

समय पाकर इस आश्रम की ख्याति विदेशों में भी फैल गई। जो लोग बाहर से आते, वे निवेदिता के यहां अवश्य जाते। भारतवर्ष के भी सभी क्षेत्रों के नेता भी आश्रम में पहुंचते और उनके कार्य की सराहना करते न थकते। इस प्रकार निवेदिता भारतवासियों के हित के लिये दत्तचित्त हो कार्य करती रहतीं।

इधर उन का कार्य अभी अधूरा ही था। कि सन् १९०६ में बंगाल में भारी बाढ़ आ गई। जल-प्रवाह के साथ ही अकाल ने भी अपने दांत निकाल लिये। लोगों के दुःख को जब निवेदिता ने सुना तो वह कलकत्ता से चल पड़ीं। बारिसाल पहुंच कर उन्होंने अनेक गांवों में भ्रमण किया वह गांव-गांव पैदल जातीं। कई बार तो उन्हें पानी में से होकर निकलना पड़ा, किंतु वह सेवा-व्रत के नाते सहर्ष सब कष्टों को सहन करती रहीं। इन्हीं दिनों उन्होंने भारत की दरिद्रता का वास्तविक चित्र अपनी आंखों देखा। इस कठोर परिश्रम से उनका स्वास्थ्य नष्ट हो गया। उन्हें ज्वर रहने लगा। मित्रों और चिकित्सकों ने परामर्श दिया कि कुछ दिन विश्राम कीजीये, किंतु निवेदिता ने उत्तर में कहा--"मैं विश्राम कैसे कर सकती हूं। अभी इतना भारी काम करने को पड़ा है। मेरा

दुःख तो उन लोगों से कहीं कम है, जो अकाल का ग्रास बन रहे हैं।" एक बार तो एक चिकित्सक ने उनसे यहां तक कहा कि वायु परिवर्त्तन के लिये आप को यह मकान छोड़ देना चाहिये। परन्तु उन्होंने उत्तर दिया, "जिस मकान में मैंने इतने दिनों तक आश्रम पाया है, उसे कैसे छोड़दूं।" इस गली में रहने वाले सभी बच्चे जैसे मेरे हैं, उनका प्यार कैसे छोड़ दूं। इस पर चिकित्सक चुप हो गये। मन ही मन निवेदिता की उदारता की प्रशंसा करने लगे।

इस बीमारी के बाद तो उनका स्वास्थ्य अच्छा हुआ ही नहीं। उन्हें जब भी कभी ज्वर हो जाता किन्तु वह अपने ध्येय की ओर बढ़ती ही गई। स्वामी जी के आदेशानुसार उन्होंने देश के गांव-गांव में जा कर वहांकी अवस्था का अध्यन आरम्भ किया। अधिकतर वह पैदल ही गांवों में जाती थी। ऐसा करने से उनके चित्त में भारत के प्रति और भी अनुराग बढ़ा।

बहन निवेदिता ने केवल पाठशालाओं, व्यारुयानों और दीन-दुःखियों की साहयता द्वारा ही भारतीयों की सेवा नहीं की प्रत्युत उन्होंने भारत की उच्चता के विषय में अनेक पुस्तकें भी लिखीं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता का आदर्श संसार के समक्ष उपस्थित करने के लिये उन्हें पुस्तक रचना का आश्रय लेना पड़ा। उन द्वारा रचित पुस्तकों का संसार भर में आदर हुआ। उन्हें गीता से विशेष प्रेम था। उनकी धारणा थी कि गीता का कर्मयोग ही संसार को सन्मार्ग दिखा सकता है।

निवेदिता के भाषणों एवं रचनाओं से अनेकों को भारतवर्ष की सेवा का चाव बढ़ा। वह कहा करती थी—"मैं तो बातें नहीं चाहती, मुझे काम चाहिये।" और इसी के आधार पर वह अस्वस्थ दशा में भी काम

काम करती रहीं। फल यह हुआ कि उनका शरीर जर्जरित हो गया और अन्त में उन्हें विश्राम के लिये दार्जिलिंग भेजा गया। दार्जिलिंग में उन्हें अतिसार का शिकार होना पड़ा और बहुत प्रयत्न करने पर भी उनकी अमूल्य देह की रक्षा न हो सकी और १३ अक्तूबर १९११ को उनकी यह लीला समाप्त हो गई। उपरान्त हिन्दू रीत्यानुसार दार्जिलिंग की श्मशान भूमि में उनका दाह कर्म हुआ। बहन निवेदिता के देहावसान पर समस्त हिन्दू जाति ने शोक में आंसू बहाये।

भारतीय इतिहास के पत्रों में निवेदिता बहन का भारत-प्रेम सदा स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।